दानवी लीला

१॥)

प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-प्रचार-कार्य्यालय।

उपन्यास ग्रन्थमाला की पहली पुस्तक

दानवी लीला

(घटनापूर्ण जासूसी उपन्यास)

लेखक—

चन्द्रशेखर पाठक.

प्रकाशक—

हिन्दी-साहित्य-प्रचार कार्य्यालय,

१३१, मुक्ताराम बाबू ष्ट्रीट, कलकत्ता।

प्रथमवार १०००, नवम्बर १९२२।

मूल्य साधारण सं० ॥।=), राज सं० १।), सुनहरी रेशमी जिल्द १॥।)

प्रकाशक—
दीनानाथ सिगतिया।
हिन्दी-साहित्य-प्रचार कार्य्यालय,
१३१, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट,
कलकत्ता।

मुद्रक—
महादेवप्रसाद सेठ
"बालकृष्ण प्रेस"
१३ शंकर घोष लेन,
कलकत्ता।

वक्तव्य ।

प्रस्तुत पुस्तक हमारी कृति नहीं है, यह बङ्ग भाषाके दस्यु दुहिता नामक एक जासूसी उपन्यासका अनुवाद मात्र है। मूल ग्रन्थकारने इसमें महाराष्ट्र देशकी घटना वर्णन की है, पात्र पात्रियोंके नाम भी उसीके अनुकूल रखे हैं, परन्तु महाराष्ट्र जातिके समाज संगठनके नियमोंसे अपरिचित रहनेके कारण कुछ भूलें कर दी हैं। बस उतना ही अंश हमें परिवर्त्तन करना पड़ा है। कुछ भी हो पुस्तककी मनोरंजकतामें कमी न आने देनेकी चेष्टा की गयी है। आशा है, कि जासूसी उपन्यासोंके प्रेमियोंका इससे मनोरंजन तो होगा ही साथ ही कुछ उपदेश भी प्राप्त होगा।

विनीत—

चन्द्रशेखर पाठक ।

दानवी लीला ।

प्रारम्भ ।

नपति राव और लक्ष्मीपति राव पूनाके बड़े धनी-मानी सेठ थे। उनका कारबार खूब बढ़ा चढ़ा था तथा जन-साधारणमें उनकी कीर्त्ति खूब फैल रही थी।

धनपतिराव वृद्ध थे। बहुत दिवस हुए, उनकी पत्नीका स्वर्गवास हो चुका था। इस संसारमें एक पुत्र तथा एक सुन्दरी कन्याके सिवा दूसरा अपना कहलानेवाला न था। लक्ष्मीपति अभी नवयुवक थे। उनका विवाह न हुआ था। धनपति इन्हें अपने छोटे भाईके समान मानते और स्नेह करते थे और लक्ष्मीपति भी धनपति रावको बड़े भाईके समान ही समझते और उनका आदर करते थे।

एक दिन धनपति राव अपने खास कमरेमें बैठकर अपने हिसाब-किताबकी देख-रेख कर रहे थे। बाहरके कमरेमें अन्यान्य कर्म्मचारी बैठे काम कर रहे थे, इसी समय एक चपरासीने आकर एक तार उनके हाथमें दिया। जिसका कारबार चारों ओर फैला हुआ है, व्यवसाय-सूत्रके कारण जिसका अनेकानेक मनुष्योंसे सम्बन्ध है, उसके पास तार आना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अतः अन्य कर्मचारियोंने इस विषयपर कोई विशेष ध्यान न दिया। तारका चपरासी अपना काम कर चला गया।

अनुमान एक घण्टेके बाद, उनके प्रधान कर्मचारीने किसी कार्यवश उनके कमरेमें प्रवेश किया और वहाँ घुसते ही एकबार जोरसे चिल्लाकर उसी समय बाहर लौट आया।

धनपतराव जिस तरह अपनी कुर्सीपर बैठे थे, उसी तरह बैठे रह गये। न जाने किस समय उनका प्राण पखेरू देह-पिञ्जर छोड़कर उड़ गया। इस समय उनका शरीर कड़ा, आंखे स्थिर और चेहरा पीला हो रहा था।

क्षण भरके बाद ही चारों ओर हाहाकार मच गया। सभी उस कमरेमें जा पहुंचे। डाक्टरको बुलानेके लिये आदमी भेजा गया। उन्होंने आकर उनकी परीक्षाकर कहा—"हृदयरोगसे, किसी आकस्मिक उत्तेजनाके कारण, इनकी मृत्यु हुई है। परन्तु ऐसी क्या बात हुई, जिससे ये इतने उत्तेजित हो गये थे।"

कोई इस प्रश्नका यथार्थ उत्तर न दे सका। सभी एक दूसरेका चेहरा देखने लगे। इसी समय जमीनपर पड़े हुए तारपर डाकृरकी दृष्टि जा पड़ी और वह उसे उठाकर पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—"नर्म्मदाका जङ्गल पार करते समय गाड़ी पर डाकुओंका आक्रमण हुआ। सब चला गया—तारा"।

डाकृरने फिर प्रधान कर्म्मचारीकी ओर देखकर पूछा—"तारा कौन है?"

उसने कहा—"धनपतिकी कन्या।"

तारा इन्दौर गयी थी—कर्म्मचारी इतनाही जानते थे; परन्तु इस तारसे उससे क्या सम्बन्ध है, और उसने यह तार क्यों दिया तथा इस घटनासे और तारासे क्या सम्बन्ध है—इस विषयमें कोई भी कुछ बता न सका।

कई दिनोंसे अस्वस्थ्य रहनेके कारण लक्ष्मीपति कार्य्यालय में न आकर घरमें ही पड़े रहते थे। तुरन्त ही इस दुर्घटनाकी खबर देनेके लिये उनके पास भी मनुष्य दौड़ता हुआ गया। वे तुरन्त आफिसमें आ पहुंचे। ज्येष्ठ-भ्राताके समान प्रबल हिताकांक्षी धनपतिबाबूकी मृत्युसे, उनके हृदयपर बड़ा आघात पहुँचा है। यह बात उनकी आंसू भरी आंखे, विशुष्क, मलिन मुख और ठण्डी साँससे ही अच्छी तरह मालूम हो गयी।

लक्ष्मीपतिने तार पढ़ा और माथा पीटकर वहीं जमीनपर बैठ गये। कुछ देरके बाद एक लम्बी सांस खींचकर बोले—"इसी गाड़ीमें रुपये थे। सब चला गया। हमारा कौन—"

एकाएक लक्ष्मीपति चुप हो गये। यह बात जिन्होंने सुना वे आपसमें एक दूसरेका मुँह देखने लगे। इसी समय ताराबाई तथा उसके सहोदरके पास तार भेजा गया—"तुमलोग शीघ्र ही आओ। तुम्हारे आनेपर शव-संस्कार होगा।"

दूसरे दिन सवेरे ही कितने ही समाचार पत्रोंमें इस डकैती का यह समाचार प्रकाशित हो गया :—

"पहले नर्मदा-तटस्थ जङ्गल पार करते समय अक्सर ही गाड़ियोंपर डाकू आक्रमण करते थे। परन्तु आज चार वर्षों-से हमलोगोंको ऐसे किसी अत्याचारकी सूचना न मिली थी। कल एक गाड़ो कई आरोहियोंको लेकर उसी जङ्गलकी राहसे आ रही थी, अचानक एक सशस्त्र डाकूने उसपर आक्रमण किया। डाकूके वेशमें कुछ विशेषता थी। वह सरसे पैरतक लटकता हुआ एक लम्बा चोग़ा पहने हुए था। जिससे सारा शरीर ढक गया था। केवल आंखोंके स्थानपर दो छिद्र थे। इसी गाड़ीमें पूनाके विख्यात धनी धनपतिराव, लक्ष्मीपतिरावका प्रचुर धन था। डाकू सब लूट ले गया और जाते समय कागजका एक टुकड़ा उस गाड़ीमें फेंक गया, जिसमें बड़े बड़े अक्षरोंमें लिखा था—"कालूराय।"

यह समाचार पढ़कर सभी विस्मित, चकित तथा भय-प्रकम्पित हो उठे। क्योंकि लोगोंकी धारणा हो गयी थी कि वृटिश-शासनके जासूस विभागकी अकातर चेष्टासे डाकुओंका मूलोच्छेद हो गया है और अब नर्म्मदा तटका

भयानक जङ्गल भी दस्युओंसे शून्य तथा आपदाओंसे रहित हो गया है। अस्तु, जिस समय इस समाचारको पढ़कर शहरके अन्यान्य धनी-मानी कांप रहे थे, उस समय लक्ष्मीपति-के घरमें शोककी तरङ्गे उठ रहीं थीं; पितृ-शोक कातरा तारा लक्ष्मीपतिके सामने बैठकर आंसू बहा रही थी।

उसकी अवस्था इस समय चौदह वर्षकी है, परन्तु देखनेसे सत्रह वर्षसे कमकी नहीं मालूम होती। डाकुओंने उसकी समस्त सम्पत्ति लूट ली—इसी आघातको सहन न कर सकनेके कारण उसके पिता परलोकवासी हो गये हैं। तारा इस आकस्मिक विपत्तिसे म्रियमान होकर, तार पाते ही, पूना लौट आयी। यहां आकर उसने देखा, कि जिसकी स्नेह-शील गोदमें वह इतनी बड़ी हुई है, वे अब इस जगतमें नहीं हैं। ताराके दुःख शोकका पारावार न रहा। रोते रोते उसकी आमकी फाँकोंसी बड़ी बड़ी दोनों आंखें लाल होकर फूल उठीं। अश्रु-सिक्त मुख-कमल वर्षा-सिक्त विशुष्क प्रदोष पक्षकी भाँति दिखायी देने लगा। काले, घुंघराले, लम्बे और घने केशोंका गुच्छा कातरा ताराके अंग-सञ्चालनके साथ इधर उधर हिलकर, कभी कभी वर्षाकी रात्रिके वायु-ताड़ित बादलोंके टुकड़ोंकी तरह उसके मुख-चन्द्रको छिपाने लगा। उन्नत उरोज तेजीसे श्वास-प्रश्वासके कारण उठने बैठने लगे और सुन्दर नासिकासे निकली हुई गर्म सांस उसके हृदयमें प्रज्ज्वलित शोकाग्निकी प्रबल सूचना देने लगी।

सामने बैठे हुए लक्ष्मीपति कितनी ही तरहसे उसे समझाने बुझाने लगे। उनके मधुर वाक्य और सहानुभूति भरे शब्दों से शोकका उच्छ्वास कम हो जाने पर, जब तारा कुछ शान्त हुई, तब लक्ष्मी-पतिने कहा—"आज तक हम लोग ऐसी विपत्ति में कभी न पड़े थे। हमारा धन तो गया ही, साथ ही ज्येष्ठ भ्राताका प्राण भी उसी धन शोकमें चला गया। डाकू सब ले गये। अब भविष्यमें तुम लोग क्या करोगे? कहाँ जाओगे—यही मेरी समझमें नहीं आता!"

तारा बोली—"चला गया था, तो चला जाय। लक्ष्मी तो चंचला होती ही है। परन्तु पिताकी मृत्यु······।" इतना कहकर वह फिर रोने लगी

लक्ष्मीपति बोले—'तुम अब बालिका नहीं हो। अब रोनेसे क्या होगा? गयी हुई चीज़ क्या फिर हाथमें आती है? मुरझायी कली तो फिर नहीं खिलती। परन्तु तुम्हारी बातोंसे मालूम होता है, कि प्रकृत घटना अभी तक तुम समझ न सकी हो। हम लोगों पर कैसी आफत आयी है, इसका अनुमान तुम न कर सकी हो। उस गाड़ीमें पचास हजार रुपये—हमारा यथासर्वस्व था। कालूरायकी कृपासे आज हमारा यथासर्वस्व चला गया। हम पथके भिखारी हो गये, कल ही यह कारबार उठा देना पड़ेगा, यह सोच कर ही एकाएक शोकसे उत्तेजित हो, तुम्हारे पिता परलोक पयान कर गये हैं। मेरे ज्येष्ठ सहोदर तुल्य तुम्हारे पिता हाय! अब इस

संसारमें नहीं हैं। हा भगवन्! तुमने क्या हमारे लिये ही यह दुःख-गह्वर खोद रखा था?

युवक लक्ष्मीपति इतना कह, दोनों हाथोंसे मुंह ढककर रोने लगे। उनकी यह अवस्था देखकर ताराने कहा—"यदि सचमुच ही इस दुर्घटनासे हमारा सब कुछ चला गया है, तो अवश्य ही विचारणीय बात है। अब मेरे भाईका क्या होगा? उनकी पढ़ाईका खर्च कहांसे चलेगा? और......"

ताराके मुँहकी बात मुँहमें ही रह गयी। दासीने आकर कहा—"छोटे बाबू आये हैं।"

इतना सुनते ही वह जोरसे रो उठी। तुरन्त ही दुःखित बदन तथा अश्रु-सिक्त आँखोंवाला एक बीस वर्षका नवयुवक उस कमरेमें आ पहुंचा। नवयुवक ताराका सहोदर भाई "शङ्करराव" था।

शोकका प्रथम वेग कुछ कम हो जानेपर शङ्कर रावने लक्ष्मी पतिसे पूछा—"चचा, सुना है अब हम लोगोंकी कोठी उठ जायगी, क्या यह बात सच है? कारवार जारी रखनेका क्या अब कोई उपाय नहीं है?"

सर हिलाकर लक्ष्मीपतिने कहा,—"नहीं, यदि कोई भी उपाय रह जाता तो मैं इस तरह चुप होकर न बैठता। तुम अबतक भीतरी बातें नहीं जानते, इसीसे ऐसी बात कहते हो। मैं तुम्हें सब भेद बताता हूं, ध्यानसे सुनो। जयन्तपुरमें हमारा एक शाखा कार्यालय था। मदन जी वहांका कार्याध्यक्ष था।

उस पर हम लोगोंका पूरा विश्वास था और वह था भी बड़ा साहसी और पूरा कार्य्यदक्ष। वहांके कारबारमें लाभ देखकर हम लोगोंने एकबार चालीसहजार रुपये वहां भेज दिये। थोड़ेही दिनोंमें उस कारबारसे खर्चवर्च बाद देकर दस हजार रुपयोंकी बचत हुई। तुम्हारे पिताने मेरे परामर्शसे सब रुपये लेकर मदनजी को पूना चले आनेके लिये लिखा। इस समय तारा भी इन्दौरसे लौटकर जयन्तपुर आ पहुंची थी। उसे भी मदनजी के साथ आनेके लिये लिख दिया गया। रेलवे स्टेशन जयन्तपुरसे कुछ दूर है। वहां तक आनेके लिये घोड़ा या बैल गाड़ी का ही पथ है। यह पथ बड़ा ही दुर्गम और भयानक है। जिस दिन मदनजीके रवाना होनेकी बात थी। उसके एक दिवस पहले एकाएक वह बीमार हो गया और तारासे सलाह कर सब रुपये थैलीमें बन्द कर एक बक्समें रख दिया और ताराके साथ ही उन्हें भी रवाना कर दिया।

मनकी उत्तेजना और विरक्त भाव दमन न कर सकनेके कारण शंकर बोल उठा—"भूल! भयानक भूल!! जिन रुपयोंके साथ सशस्त्र पहरेदार भेजना उचित था, वह एक स्त्रीके साथ अरक्षित भावसे भेजा गया!

लक्ष्मीपतिने शान्त भावसे कहा—"वास्तवमें एक भयानक भूल—एक मूर्खता हो गयी। मदनजीने कौशलसे काम बनाना चाहा था। उसने लोगोंसे कहा था, कि बीमारीकी वजह

साथ न जा सकनेके कारण मैं रुपये नहीं भेज रहा हूं। अकेली तारा ही उस गाड़ीमें जा रही है।

शङ्करने और भी विरक्ति भरे स्वरमें कहा—"यह तो और भी मूर्खताकी बात है। ठएठ मूर्ख हुए बिना ऐसी बात पर निर्भर कर कोई भी इतनी सम्पत्ति एक स्त्रीके तत्वावधानमें नहीं भेज सकता।"

लक्ष्मीपतिने कहा—"वास्तवमें मदनजीका काम मूर्खता-पूर्ण हुआ। हम उसे सहजमें ही छोड़ न देंगे। मैंने उससे इस तरह रुपये भेजने और स्वयं न आनेकी कैफियत तलब की है। अस्तु इसके बाद जब गाड़ी जयन्तपुर पारकर नर्म्मदाके जङ्गलमें घुसी और कुछ ही दूर अग्रसर हुई, कि एक छद्मवेशधारी डाकूने गाड़ी पर आक्रमण किया। गाड़ीमें एक दरवान था। उसे मारकर डाकू रुपयेका बक्स उठाकर भाग गया।"

शङ्कर—"उस मनुष्यकी आकृति कैसी थी?"

ताराने कहा—"आकृति कैसी थी और वह किस जातिका था, यह मैं नहीं बता सकती। यह जाननेका कोई उपाय भी न था, क्योंकि एक काले चोगेसे वह अपना समूचा शरीर छिपाये हुए था। केवल दो छिद्रोंसे उसकी दोनों आंखें दिखायी देतीथीं। रुपयेका बक्स उठाकर भागते समय वह एक पुर्जा फेंक गया। जिसमें बड़े बड़े अक्षरोंमें लिखा था—"कालूराय" इसके अतिरिक्त उसमें और कुछ भी लिखा न था।

लक्ष्मीपतिने कहा--"यह अत्यन्त क्षीण सूत्र है। इसे अवलम्बन कर उसे पकड़ना कठिन है। सम्भव है कि हस्ताक्षरसे वह पकड़ा जाय।"

शङ्कर—"मुझे मालूम होता है, कि मदनजी ही वह जङ्गली डाकू है। क्या लूटते और गाड़ी पर आक्रमण करते समय उसका कण्ठ-स्वर सुन पड़ा था ?

तारा--"नहीं, चुपचाप आया और बिना कुछ बोले ही बक्स लेकर भाग गया।"

शङ्कर—"तब तो इसमें सन्देह नहीं, कि यह मदनजीका ही काम है।"

तारा—"परन्तु जब मैं जयन्तपुरसे चली थी, तब वह रोगसे शय्यागत हो रहा थो।

शङ्कर—"वह पापीका छल था। कपटी रोगका बहाना कर शय्यापर पड़ा था। तुम्हारे रवाना होने पर दूसरी राहसे उसने जंगलमें प्रवेश कर रुपये लूटे और घरकी राह ली।"

लक्ष्मीपतिने कहा—किसी मनुष्यको जयन्तपुर भेजने या स्वयं जाकर पता लगानेसे यह बात छिपी न रहेगी। यदि किसी तरह यह मालूम हो जाये, कि मदनजी उस दिन कहीं गया था, तो मैं तुरन्त ही उसे पुलिसके सुपुर्द करूंगा।"

शङ्करने क्षुब्ध भावसे कहा—"ये पीछेकी बातें हैं। इस समय विचारणीय बात यह है, कि क्या सचमुच ही हम लोगोंको अब पथका भिखारी बनना पड़ेगा।"

लक्ष्मीपति—"हमें जितना देना हैं, उसमें ही मकान, बगीचा, जो कुछ है, सब नीलाम हो जायगा। मैंने बहुत कुछ सोच विचार कर निश्चित किया है, कि किसी तरह चार हजार रुपये बच जायँगे, जिसमें दो हजार तुम्हें मिलेंगे।"

ताराका म्लान मुख क्षण भरके लिये विकसित हो उठा उसने शंकरकी ओर देखकर कहा—"तब तुम्हारी पढ़ाईमें कोई बाधा न पहुँचेगी? क्यों भय्या, वे रुपये समाप्त होते न होते तुम्हारी पढ़ाई भी समाप्त हो जायगी?"

शंकरकी आँखोंमें जल भर आया। उसने दृढ़तासे उसे रोक कर—"तारा, मेरा पढ़ना लिखना अब समाप्त हो गया। अब मैं क्या करूंगा, सो समय आनेपर बता दूंगा। जबतक मदनजीसे भेंट नहीं होती, तबतक मैं कुछ भी निश्चय नहीं कर सकता।"

इसके बाद सब अपने अपने स्थानपर चले गये। यथा समय धनपतिरावकी और्द्ध दैहिक क्रिया समाप्त हुई। साथ ही धनपतिराव और लक्ष्मीपतिरावका सम्मिलित कारबार भी उठ गया। मदनजी भी पूना आया। उसकी दशा देखकर ही सबको मालूम हो गया, कि वह वास्तवमें रोगग्रस्त था। जयन्त-पुर जाकर भी इन लोगोंने पता लगाया। परन्तु इस घटनासे मदनजीका कोई सम्बन्ध न मालूम हुआ। कालूरायको पकड़ने-के लिये सरकारकी ओरसे बड़े बड़े जासूस नियुक्त हुए। परन्तु उसे गिरफ्तार करनेका कोई सूत्र न मिलनेके कारण सभी हताश हो बैठे।

शङ्करने विशेष चेष्टा कर इतना पता पा लिया, कि मदनजी पर जासूस दलकी कुदृष्टि अभी तक है। उनका विश्वास हैं, कि मदनजी स्वयं कालूराय न होनेपर भी दस्युदलसे उसका सम्बन्ध अवश्य है।

शङ्करने विद्यालय छोड़ दिया और जिस व्यक्तिने उसे उस दुर्दशापन्न अवस्थामें डाला था, जिसके अत्याचारसे आज उसे पितृहीन होना पड़ा था, तथा जिसकी दुर्दमनीय दुर्लालसाके कारण वह सुख-ऐश्वर्यसे वञ्चित होकर पथका भिखारी बन गया था उसके कर्म्मका प्रतिफल देकर, अपने हृदयकी प्रतिहिंसा बृत्ति चरितार्थ करनेके लिये, वह दृढ़ संकल्प कर गुप्त पुलिस या जासूस विभागमें नौकर हो गया।

पहला परिच्छेद।

गुप्त शत्रु।

शिव निवास पहले एक छोटा सा ग्राम था। यह पहाड़ी उपत्यकामें बस गया था। परन्तु व्यवसायके लोभसे अनेक स्थानोंके मनुष्य धीरे धीरे यहाँ आकर बसते गये और धीरे धीरे इसकी जनसंख्या बढ़ती ही गयी। इस गाँवके पास ही एक पहाड़ी नदी अपनी प्रखर धारासे सदा बहा करती थी। चारों ओर हरे भरे शस्य-पूर्ण खेत लहरा रहे थे। एक ओर एक पहाड़ी अपना माथा ऊंचा किये खड़ी थी। दृश्य बड़ा ही मनोमोहक अथच नेत्र-सुखकर था?

पूर्व वर्णित घटनाके बाद छः वर्षका समय धीरे धीरे व्यतीत हो गया। समय जाते तो देर लगती ही नहीं। छः वर्षका समय बीत गया, परन्तु धनपतिरावके सम्पति-नाशकका पता न लगा।

एक दिन वैशाख मासकी अन्धकारमयी रजनीमें शिव निवास के पासकी पहाड़ीके ऊपर जङ्गल झाड़ीके नीचे बैठे हुए तीन

मनुष्य गांजा पीते और आपसमें बातें करते थे। साथ ही सतर्क दृष्टिसे इधर उधर देखते भी जाते थे।

इसी तरह कुछ समय बीत जानेपर एक मनुष्यने कहा अब और कितनी देर बैठा रहूंगा। बैठे बैठे तो कमरमें दर्द हो गया।"

दूसरा बोला—"अब अधिक देरतक बैठना न पड़ेगा। शीघ्रही शिकार आपसे आप यहाँ आ पहुँचेगा। क्यों केशव! क्या तुम्हें डर लगता है। मुँह सूख क्यों रहा है?"

केशव नवयुवक था। उसने उत्तेजित स्वरमें कहा—"भय किसे कहते हैं, सो मैं जानता ही नहीं मदन, तुम ऐसी बात क्यों कहते हो।"

मदनने कहा—"सो मैं जानता हूं, तुमसे केवल हंसी करता हूं, परन्तु यह सदा स्मरण रखना कि शङ्कर तुम्हारा मित्र नहीं है।"

केशव—"सम्भव है; परन्तु आजतक उसने मेरे साथ कोई दुर्व्यवहार न किया। मैं केवल तुम्हारी इच्छासे ही इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूं। परन्तु उसपर तुम इतने खड्गहस्त क्यों हो रहे हो? तुम्हारी बातों और कामोंसे मालूम होता है, कि तुम नरहत्या या ऐसे ही किसी अपराधके अपराधी हो और शङ्कर मानों तुम्हें गिरफ्तार करनेके लिये ही चारों ओर घूमा करता है तथा तुम उसके चंगुलसे छुटकारा पानेके लिये उसको नष्ट करनेकी चेष्टा कर रहे हो। बात क्या है, मदनजी?"

मदन—"बात दूसरी कुछ नहीं—वही पुरानी बात ही है। डरो मत। मैं नर-घातक नहीं हूं। पहाड़ी डाकू कालूराय, शङ्करके पचास हज़ार रुपये लूट ले गया है। उसे गिरफ्तार करनेकी इच्छासे ही शङ्कर राव जासूस विभागमें घुसे हैं। उनकी धारणा है, कि मैं ही वह विख्यात डाकू कालूराय हूं। इस भ्रान्त विश्वासके वशवर्त्ती होकर वह आज छः वर्षों से मेरा पीछा कर रहा है।"

केशव—"बात समझमें न आयी। इतने मनुष्योंके रहते हुए जासूसोंकी दृष्टि तुमपर ही क्यों जा पड़ी?"

मदन—"इसलिये कि मैं उनके कार-बारका एक कर्मचारी था। जयन्तपुरसे मैंने ही ताराबाईके साथ रुपये रवाना किये थे। ताराके सिवा रुपयेकी बात और कोई जानता भी न था। राहमें कालूरायने गाड़ीपर आक्रमण कर रुपये लूट लिये। इन्हीं कारणोंसे शंकरके मनमें यह बात बैठ गयी है, कि कालूराय कोई दूसरा नहीं, मैं ही हूं।"

केशव—"जैसी अवस्था है, उससे शंकरको दोष नहीं दिया जा सकता। तुम्हें उसे सन्तुष्ट कर देना चाहिये।"

मदनजीने लाल लाल आंखे कर कहा—"सावधान केशव!! ऐसी बात फिर मुंहपर न लाना। तुम मेरे मित्र हो, इसीलिये तुम्हें छोड़ दिया। (छुरा दिखाकर) यदि कोई दूसरा होता तो यह छुरी अबतक उसके कलेजेके पार हो गयी होती।"

केशवने हंसकर कहा—"मैंने हंसीसे यह बात कही है। मैं

तुम्हारे इच्छानुसार कार्य्य करनेको तैयार हूं ; परन्तु तुम्हें भी एक प्रतिज्ञा करनी पढ़ेगी।"

मदन—"क्या ?"

केशव—"तुम शङ्करराबकी हत्या न कर सकोगे ?"

मदन—"मैं शपथ पूर्वक कहता हूं कि उसका प्राण हरण न करूंगा। केवल कुछ दिनों तक उसे कैद कर रखूंगा। ऐसा न करनेसे मुझे आफतमें पड़ना पड़ेगा।

तीसरा मनुष्य कुछ न बोला। अब केशवने उसकी ओर देखकर कहा—"क्यों गोबर्द्धन ? तुम्हारी क्या राय है ?"

गोबर्द्धनने एक वार और भी दम लगाकर कहा—"उनसे मेरी कोई शत्रुता नहीं है। मैं केवल मदनजीकी सहायता कर रहा हूं।"

मदनजीने सन्तुष्ट होकर कहा—"अच्छी बात है, तुम लोग मेरी सहायता करो। मैं भी विपत्तिमें तुम्हारी सहायता करूँगा। हम लोग एक दूसरे को अच्छी तरह पहचानते हैं। शङ्करराव की चातुरी, क्षमता तथा साहसकी जैसी चारों ओर प्रशंसा हो रही है, जिस तरह अपनी प्रशंसा सुन सुनकर उसका दिमाग चढ़ा जाता है, इससे एक वार उसे मजा चखाये बिना हम लोगोंका निरापद रहना कठिन है। अच्छा चुप रहो कोई आ रहा है।"

शत्रु अब भी पीछा करते चले आते थे। पथ जैसा अन्धकार मय वैसा ही ऊबड़-खावड़ था। एकाएक एक पत्थरपर ज्योंही

दुर्वृत्त जिसकी अबतक राह देख रहे थे, वास्तवमें वही मनुष्य असन्दिग्ध चित्तसे शिवनिवासकी ओर उस समय अग्रसर हो रहा था। किसी प्रकारकी विपत्तिका भय न रहने के कारण न तो वह सन्दिग्ध ही था, न कुछ सतर्क ही। अतः जिस समय निर्भय और निर्विकार चित्तसे वह उस स्थान पर आया, उसी समय अन्धकारसे तीन मनुष्य एकाएक निकल कर उसपर झपट पड़े और उसके मुँहपर एक वस्त्र डालकर उसका मुँह बन्द्कर देनेकी चेष्टा करने लगे।

आज छः वर्षोंसे शङ्कर राव जासूसी कर रहे थे। एकाएक आक्रमण होनेपर किस तरह अपनी रक्षा की जाती है, इन छः वर्षोंमें, इस बातका उन्हें अच्छी तरह अनुभव हो गया था। जासूसी-जीवन सदा विपत्तिसे भरा है, यह बात वह अच्छी तरह जानते थे और इसीलिये सदा सतर्क रहते थे। अतः एकाएक जिस समय उनपर आक्रमण हुआ उसी समय शङ्कररावने सामने वाले मनुष्यको उछलकर एक लात मारा। लात खाकर वह मनुष्य दो तीन हाथ दूर जा गिरा।

उसी समय एक दूसरे मनुष्यने चिल्लाकर कहा—"यह सहज ही वशमें न आवेगा, छुरी चलाओ।"

अब, जिस मनुष्यने वस्त्र द्वारा मुँह बांधनेकी चेष्टा की थी, वह वस्त्र फेंक कर छुरी, निकाल, आक्रमण करनेके लिये तय्यार हो गया। अवस्था भयानक देखकर शङ्कररावने दूसरे मनुष्यको पकड़कर आक्रमणकारी और अपने बीचमें ढकेल दिया।

अन्धकारमें आक्रमणकारी अपना लक्ष्य स्थिर न रख सका। उसने छुरेसे आघात किया, परन्तु वह आघात शङ्कररावको न लगकर उस दूसरे मनुष्यको लगा। वह जोरसे चिल्ला उठा। इसी समय वह लात खाकर गिरा हुआ मनुष्य छुरा निकालकर शङ्कररावकी ओर झपटा। शङ्कररावने क्षण भरका भी विलम्ब न कर, छुरेसे आहत मनुष्यको जोरसे एक तमाचा दिया और उसे एक ओर ढकेल तेजीसे इधर उधर अन्धकारमें दौड़ने लगे।

इसके बाद ही पिस्तौलका एक शब्द हुआ। अन्धकारमें शङ्कररावके पाससे ही सन सन करती हुई गोली निकल गयी। अब शङ्करराव तेजीसे एक ओर भागे। फिर शब्द हुआ और दैव-इच्छासे फिर भी गोली उन्हें स्पर्श न कर दूर निकल गयी। शङ्करराव आगे आगे भागते जाते थे और उनके शत्रु उनका पीछा करते हुए पिस्तौल दागते जाते थे। पिस्तौल गरज गरज कर गोलियाँ बरसा रही थी। इस बार शङ्कररावको अपने दाहिने कानके ऊपर, माथेमें, जोरका दर्द मालूम हुआ। सौभाग्यवश आघात अधिक न लगा था। गोली मांसका कुछ अंश छीलती हुई निकल गयी थी। परन्तु रक्त जोरोंमें बहना आरम्भ हो गया था। इतने पर भी शङ्करराव भागते ही गये। पहले तो चोट अधिक न मालूम हुई। परन्तु धीरे धीरे उनका शरीर अवसन्न हो चला। माथा घूमने लगा और वे कुछ उद्विग्नसे मालूम होने लगे।

शत्रु अब भी पीछा करते चले आते थे । पथ जैसा अन्धकार मय था वैसा ही उबड़ खाबड़ भी था । एक पत्थर पर ज्योंही उन्होंने पैर रखा, त्योंही पैर फिसल गया और सम्भल न सकनेके कारण वे पास ही गड़हेमें जा गिरे । जिस स्थान पर वह गिरे थे, वह नीचेकी ओर ढालुवां तथा जङ्गली वृक्ष-लताओंसे परिपूर्ण था ।

गिरनेसे शङ्करराबको विशेष चोट न लगी । इससे अनिष्टकी अपेक्षा इष्ट कीही विशेष सम्भावना उन्हें दिखाई दी । क्योंकि विपक्षियोंने उन्हें उस गड़हेमें गिरते न देखा था । वे अवश्य ही उस गड़हेको पार कर चले जायेंगे--यही सोचते हुए, शङ्करराव निश्चिन्त मनसे बैठ गये ।

क्षण भर बाद ही शत्रु उस स्थानपर आकर खड़े हो गये । उनमें एक बोला,—"बड़ी ही आश्चर्य-जनक घटना है । मैंने उसे इसी स्थानपर खड़े होते देखा है । फिर वह क्या हवामें मिल गया ?"

दूसरा बोला—"मालूम होता है, कि तुम्हारे पिस्तौलकी गोली विफल नहीं हुई ।"

पहला बोला—"तो फिर लाश कहां चली गयी ?"

तीसरा बोला—"ओह ! बड़ा कष्ट हो रहा है, छुरेसे हाथमें बड़ा भारी घाव हो गया है । यदि बच्चाजीको एक बार पकड़ पाता तो अच्छी तरह बदला चुका लेता, टुकड़े टुकड़े कर डालता ।"

पहला बोला—"केवल बक बककर समय नष्ट करनेसे कोई लाभ न होगा। वह यहीं कहीं छिपा है—सब स्थान अच्छी तरह खोजना होगा। खबरदार, कोई किसीका नाम लेकर न पुकारना। जैसे हो, खोज निकालो। वह यदि आज जीवित चला गया तो हम लोगोंका जीवन बचना कठिन हो जायगा। शङ्करराव साधारण जासूस नहीं है।"

शङ्करराव कांप उठे। तीन मनुष्योंमें दोका कण्ठ-स्वर उन्हें परिचित सा मालूम हुआ। परन्तु वह कुछ निश्चित न कर सके, कि यह किसका शब्द है। इसी समय उन तीनोंमेंसे एक झाँककर तीक्ष्ण दृष्टिसे उस गड़हेकी ओर भी देखने लगा। अब शङ्कररावने जेबसे पिस्तौल निकाल लिया। और मन-ही-मन विचारा कि एक शत्रुको कम कर दूं। परन्तु तुरन्त ही यह बात उनके ध्यानमें आ गयी, कि फिर यहांसे जीवित निकल जाना कठिन हो जायगा और बचे हुए दोनों अनायास ही उन्हें अपनी गोलीका शिकार बनानेमें समर्थ होंगे।

वे जहां गिरे थे, वह स्थान उस जगहसे पांच छः हाथ नीचे था, जहां शत्रु खड़े थे। पहले ही कह चुके हैं, कि स्थान ढालुआं था और जङ्गली वृक्ष-लताओंसे परिपूर्ण हो रहा था। शङ्करराव उन्हीं वृक्षोंमेंसे एकको पकड़ अपनेको छिपाकर बैठ गये। शत्रुओंने कितनी ही बार ध्यानसे उस स्थानको देखा परन्तु कुछ पता न पा सके। लाचार लौट गये। रक्तक्षय और मानसिक उत्तेजनासे शङ्कररावका माथा घूमने लगा। इधर भार पाकर

वह शिथिल-मूलवृक्ष भी जड़से उखड़ गया। शङ्करावने एक पत्थरको पकड़कर अपनी रक्षा करनी चाही, परन्तु रक्त निकल जानेके कारण दुर्बल हुए बाहु उस पत्थरको जोरसे न पकड़ सके। इसी समय उनका ज्ञान लोप होने लगा। वे नीचेकी ओर लुढ़क पड़े और साथ ही बेहोश हो गये।

दूसरा परिच्छेद।

वन-वासिनी

रे धीरे शङ्कररायकी बेहोशी दूर हुई। नींद टूटनेके बाद, रातमें देखे हुए दुर्घटनामय स्वप्नकी तरह, उन्हें रातकी समस्त घटनायें एक एककर याद आने लगीं। उन्होंने समझा था, कि वे पहाड़के किसी गड़हेमें गिरे होंगे, परन्तु यह क्या? नींद खुलते ही उन्होंने देखा, कि यह तो पहाड़का कोई गड़हा नहीं, बल्कि किसी मनुष्यका निवास-स्थान है। वे मनही मन विचारने लगे—अबतक मैं स्वप्न तो न देख रहा हूं। उन्होंने आंखें बन्द कर लीं, फिर खोलीं। इस बार उन्होंने देखा, कि कोमल कर-पल्लव उनके क्षत स्थानसे बहे

हुए रक्तके दागको धो रहा है। उन्होंने माथा घुमाकर देखा कि सिरहानेकी ओर बैठकर एक सुन्दरी उनको सुश्रूषा कर रही है। उसीकी प्राणपण चेष्टासे उनकी बेहोशी दूर हुई है।

सुन्दरी युवती है, परन्तु शरीरपर कोई अलङ्कार नहीं है। वेश-भूषाकी ओर उसका कोई ध्यान भी नहीं है—एक स्वभाव सुन्दरी वनलताके समान अपने सौन्दर्य—अपने गौरवसे आपही गरीयमान हो रही है! उसकी देह वर्षाकी वारि प्लाविता पूर्ण कलेवरा तरङ्गिनीकी भांति हृष्ट-पुष्ट है। सुन्दरीने शङ्करराव को होशमें आया देखकर आग्रहसे पूछा—"महाशय! अब आप कैसे हैं? आपकी बेहोशी शीघ्र दूर न होती देखकर मैं बड़ी चिन्तित हो रही थी।

उस युवतीके दी हुई जङ्गली ओषधिसे शङ्करावका रक्त-स्राव पहले ही बन्द हो गया था और शरीर कुछ सबल मालूम होने लगा था। अतः उन्होंने उठकर कहा—"अब मैं अच्छा हूं, परन्तु मैं यहां किस तरह आ पहुँचा?"

सुन्दरी—"मैं ही ले आयी हूं। आप मेरी कुटीके पास ही पहाड़-तलीमें अज्ञानावस्थामें पड़े थे।"

शङ्कर—"तुम अकेली ही उठा लायी हो?"

किशोरीने लज्जासे माथा झुकाकर कहा—"हां"।

वनबाला जैसी यह सुन्दरी कौन है? शङ्कररावके समान पूर्णवयस्क हृष्ट-पुष्ट वलिष्ट युवकको इतनी दूरतक उठा

लाना कोई सहज काम न था। शङ्करराव यह सुनकर अत्यन्त विस्मित हो उठे।

शङ्करने पूछा—"तुम कौन हो और यह झोपड़ा किसका है?"

सुन्दरी बोली—"यह गोवर्द्धनसिंहकी झोपड़ी है, मैं उनकी कन्या हूँ, मेरा नाम चन्द्रकला है।"

शङ्कर—"चन्द्रकला! आज तुम्हारी ही कृपासे मेरा प्राण बचा है, तुम बड़ी दयावती हो।"

चन्द्रकलाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा—गालों पर गुलाबी-रङ्ग दौड़ गया और बड़ी बड़ी आंखें नीचेकी ओर झुक गयीं। इस निर्जन रात्रिमें युवक-युवतीको एकत्र देख मानो अनङ्ग कहींसे छिपकर पुष्पबाण छोड़नेकी तय्यारियां कर रहा था।

चन्द्रकलाने उसी तरह माथा झुकाये झुकाये ही कहा—"मालूम होता है कि आप असावधानतावश पहाड़से गिर पड़े थे।

शङ्कर—"हां।"

चन्द्रकला:—"परन्तु आपकी ओर देखकर मालूम होता है कि यह गिरनेकी चोट नहीं है।"

शङ्कर—"तुम्हारा अनुमान सत्य है। अन्धकारमयी रजनीमें कई दुराचारी मनुष्योंने मुझपर आक्रमण किया था। उनमेंसे एककी पिस्तौलकी गोलीसे ही यह चोट आयी है। उसी समय मैं भागता हुआ एक गड़हेमें जा गिरा था; परन्तु गिरनेसे

मेरा उपकार ही हुआ है। शत्रुके आक्रमणसे मेरी रक्षा हुई है और चन्द्रकलाके समान वन-देवीकी कृपा प्राप्त करनेमें समर्थ हुआ हूं।

फिर लज्जासे सुन्दरीका माथा झुक गया। वह कुछ क्षण बाद बोली—"क्या आप उन्हें पहचान सकते हैं?"

शङ्कर—"नहीं, अन्धकारमें किसीका चेहरा न देख सका। एक मनुष्यके हाथमें छुरेका घाव लगा है। यदि इस गाँवमें ऐसा कोई मनुष्य दिखाई देतो समझना कि मुझपर आक्रमण करनेवालोंमें एक वह भी है।"

इतना सुनते ही चन्द्रकलाकी आमकी फांकसी बड़ी बड़ी आंखोंमें जल भर आया और किसी अज्ञात आशङ्कासे मलिनता की एक छाया उसके चेहरे पर आ पड़ी। उसका मुख कमल कुछ मुर्झा गया। शङ्कर चन्द्रकलाके इस भाव परिवर्तनका कारण कुछ समझ न सके। वे कुछ कहना ही चाहते थे कि इसी समय कुटीके बाहरसे किसी मनुष्यका पद शब्द सुन पड़ा। चन्द्रकलाने मलिन मुख और शङ्का भरे स्वरमें कहा,—"कोई आ रहा है। सम्भव है, कि आपको यहां देख कर कोई नयी विपत्ति खड़ी कर दे। छिप, जाइये शीघ्र ही इस बगलवाली कुटीमें छिप जाइये।"

बात यह थी, कि गोबर्द्धन शिवनिवास गांवसे कुछ दूर पर एक कुटी बनाकर रहता था। इस कुटीमें दो कोठरियां थीं। सामनेकी कोठरी कुछ बड़ी थी। उसमें उठना-

बैठना, खाना-साना होता था और भीतरकी छोटी कोठरीमें गृहस्थीके आवश्यक सामान रक्खे रहते थे ।

क्रमशः पद-ध्वनि और भी पास मालूम होने लगी। शङ्कर अभी मन ही मन कुछ सोच ही रहे थे, कि चन्द्रकलाने उनका हाथ पकड़कर जबर्दस्ती उन्हें पिछली कोठरीमें ढकेलकर बाहरसे दरवाजा बन्द कर दिया। शङ्कर राव उसी टूटे-फूटे दरवाजेके पास यह देखने के लिये बैठ गये कि भीतर कौन आता है ।

कुछ ही क्षण बाद कुटीका दरवाजा खोलकर एक लम्बा-चौड़ा तगड़ा मनुष्य उसमें घुस आया। उसका चेहरा जैसा विकट था, रंग भी वैसा ही काला था। उसकी दोनों आँखें लाल हो रही थीं । नाक बहुत ही लम्बी थी और मूँछें सफेद तथा काली मिश्रित होनेके साथ ही साथ इस तरह बे-तरह एँठी हुई, कि उसका चेहरा और भी भयानक दिखायी देता था। उसके दांत बड़े बड़े और ओठके बाहर निकले हुए थे तथा छाती ऊँची और आवश्यकतासे अधिक चौड़ी थी। अर्थात उसके समस्त शरीर पर दृष्टि डालनेसे एक विचित्र कठोरता और कर्कशता झलकती थी। उसके हाथमें पक्षी का शिकार करनेवाली एक दुनली बन्दूक थी। उसे एक कोनेमें खड़ी कर उसने चन्द्रकलाके चेहरेकी ओर देखकर कहा—"इस तरह क्यों देख रही हो ?"

चन्द्रकलाने संकुचित भावसे कहा—"कुछ नहीं ।"

उस आनेवालेने एक बार फिर चन्द्रकलाके चेहरेकी ओर

देखकर कहा—"फिर इस तरह क्यों खड़ी हो ? औरतें बन्दर की जात हैं। बिल्कुल बहुरूपिया हैं, काम करेंगीं कुछ और मुँहसे कहेंगी कुछ और ही। जल्दीसे एक सादा वस्त्र तो ले आ।"

यह मनुष्य शङ्कररावका बिल्कुल ही अपरिचित था। चन्द्रकला के प्रति उसका कर्कश व्यवहार देखकर शङ्कररावका खून उबल उठा। परन्तु चन्द्रकला उस पाखण्डीका आदेश अमान्य न कर सकी। वह मन-ही-मन विचार ही रही थी कि साफ कपड़ा लेकर क्या करेगा कि एकाएक उसकी दृष्टि उस मनुष्यके हाथपर जा पड़ी। साथ ही उसने उसका रक्त भरा कपड़ा भी देखा। शङ्करराव भी यह दृश्य उस पिछली कोठरीमें बैठे बैठे देख रहे थे। उनकी भी दृष्टि आगन्तुकके हाथ तथा रक्त भरे वस्त्र पर पड़ी थी। यह देखते ही वह काँप उठे—आगन्तुक उनके शत्रुओंमेंसे एक है।

चन्द्रकला समझ न सकी, कि आगन्तुक वस्त्र लेकर क्या करेगा। वह चकित दृष्टिसे उस मनुष्यके चेहरेकी ओर देखती रहीं। यह देखकर वह पिशाच जोरसे जमीनपर पैर पटक कर बोला—"इस तरह क्या देख रही है ? बात क्यों नहीं सुनती ?"

चन्द्रकलाने अब कातर स्वरसे कहा—"बाबा ! तुम्हारे हाथमें यह क्या हुआ है ? तुम्हारे वस्त्रमें यह रक्त कैसे लगा है ?"

वह मनुष्य और भी चिढ़ उठा। गरजकर बोला—"तुम्हारा माथा हुआ है। हाथमें क्या हुआ है, कपड़ेमें रक्त क्यों लगा

है—इतनी खोज की तुझे क्या दरकार है? जो कहता हूँ सो करो।"

चन्द्रकलाकी आंखोंमें जल भर आया। उसका कलेजा हिल गया। सूखे मुँहसे इधर उधर वस्त्रका टुकड़ा खोजने लगी। पाठक समझ गये होंगे, कि आगन्तुक चन्द्रकलाका पिता गोवर्द्धन है।

चन्द्रकलाको देर करते देखकर दुराचारी गोवर्द्धन बिगड़ कर बोला—"अन्धी है क्या? एक कपड़ा नहीं खोजकर दे सकती। इस कोठरीमें न हो उस घरसे ले आ। रहने दे, तुझे कष्ट न करना पड़ेगा। मैं स्वयं ही जाकर ले आऊँगा।"

इतना कह, गोवर्द्धन चन्द्रकलाको धमकी दे, पीछे वाली कोठरीके दरवाजे पर जा पहुंचा। इधर चन्द्रकला एक ओर खड़ी हो हवासे हिलते हुए केलेके पत्तेकी तरह काँपने लगी। वह मन ही मन सोचने लगी—न जाने क्षण भर बाद ही क्या हो जायगा। एक निरपराधीके रक्तसे कुटीकी मिट्टी सींची जायगी या किसी तरह उसका प्राण बच जायगा? चन्द्रकला बड़ी ही कातर हो उठी। उसका वह कल्पना-क्लिष्ट मुख शङ्करराव अपने जीवन भर न भूल सके।

———

तीसरा परिच्छेद।

रसिकता।

शं कर भीतर छिपे हुए सब सुन रहे थे। वे अच्छी तरह समझ रहे थे, कि गोवर्द्धन के भीतर घुसते ही मुझे विपत्तिमें गिरना पड़ेगा। इस अवस्थामें यदि कोई दूसरा मनुष्य होता तो घबड़ाकर जहांका तहाँ बैठा रह जाता अथवा भयसे बेहोश हो जाता, परन्तु तीक्ष्णबुद्धि शंकरराव वैसा न कर तुरन्त ही अपनी जेबसे एक सफेद रूमाल निकाल, दरवाजा खोलकर बाहर निकल आये और स्पष्ट स्वरमें बोले--"यह लीजिये, साफ कपड़ा तैयार है।"

गोवर्द्धन एक बार भयसे दो तीन कदम पीछे हट गया और विस्मयसे चुप होकर शंकररावके चेहरेकी ओर देखने लगा। उसको चकित देखकर, शंकररावने फिर कहा--"आइये मैं आपका आहत स्थान बाँध दूँ। मैं डाक्टरी विद्या भी कुछ, कुछ जानता हूं।"

अब गोवर्द्धनकी वाक शक्ति लौट आयी। उसके कर्कश

स्वरमें पूछा—"तू कौन है? चोर, डकैत खूनी—क्या है? शीघ्र-बता।"

शंकररावने मुसकुराकर कहा—"क्या परिचय देनेसे तुम मुझे पहचानोगे? मेरा नाम गणेश है। तुम्हारे हाथसे अब भी रक्त बह रहा है। घबड़ाओ नहीं, बैठ जाओ, मैं हाथ बांध दूँ फिर बताऊँगा कि मैं यहां क्यों आया हूं।"

शंकरकी सरलता देखकर गोवर्द्धन सिरसे पैर तक और भी जल उठा। बोला—"ठहरो मैं तुम्हारी कैफियत भी नहीं सुनना चाहता और तुम्हारी साधुता भी नहीं देखना चाहता। मैं पागल नहीं हूं। मुझमें भी कुछ बुद्धि है! सब समझता हूं कि मेरी इस सरला कन्याके तुम गुप्त प्रेमी हो। जब मैं बाहर जाता हूं, तब तुम यहाँ आकर अपनी पाप-वासना चरितार्थ करते हो। आज पकड़ गये हो, अब तुम यहां से बचकर नहीं जा सकते।"

गोवर्द्धनकी लाल आंखें और भी लाल होकर आगमें तपाये हुए लोहेके चक्रकी तरह घूमने लगीं। परन्तु इस भीषण मूर्त्तिको देखकर भी शंकरराव विचलित न हुए। उन्होंने शान्त भावसे कहा—"क्यों एक निरपराध बालिकाको अपने मुँहसे कलंक लगाते हो। तुम्हारी कन्या सावित्रीके समान सती है। मैं पर-देशी हूं, इसी राहसे जा रहा था। राहकी बगलमें, कुटीमें दीपक जलता देखकर पास चला आया और यह देखने लगा, कि कुटीमें कोई है या खाली पड़ी है। इसी समय यह बालिका कहींसे भीतर आ पहुंची और मैं इसे देखकर कोठरीमें जा छिपा।

क्योंकि यदि उस समय मैं भागता तो मुझे चोर या बदमाश समझकर डर जाती और इसकी चिल्लाहट सुनकर पड़ोसके मनुष्य यहां एकत्र हो जाते। मैंने विचारा था, कि इसके जरा हटते ही अवसर देखकर मैं भाग जाऊँगा। मैं चोर या डाकू नहीं हूं। तुम्हारे घरकी कोई चीज मैंने नहीं उठायी है।"

गोवर्द्धन विकट समस्यामें आ पड़ा। शंकरराव जिस ढंगसे बातें करते थे, उससे उनकी बातें सत्य ही मालूम होती थीं! इतने पर भी गोवर्द्धनने चन्द्रकलासे पूछा—"तू क्या कहती है।"

चन्द्रकलाने देखा कि यदि वह युवकका पक्ष-समर्थन न करेगी तो अभी रक्त-पात हो जायगा और सच्ची बातें प्रकट हो जायेंगी। यही सोचकर वह बोली—"बहुत गरमी मालूम होनेके कारण मैं कुछ देरके लिये कुटीके बाहर चली गयी थी। जब लौटी तब इस कोठरीमें कोई दिखायी न दिया। मेरी समझमें यह मनुष्य सच्ची बात ही कह रहा है।"

स्वयं पापी होनेपर भी चन्द्रकलाकी सत्यता पर गोवर्द्धनको अटल विश्वास था। अतः चन्द्रकलाका उत्तर सुनकर वह बहुत कुछ शान्त हो गया, और मन ही मन कुछ विचारने लगा। उसे अनमना देखकर शंकररावने चन्द्रकलाकी ओर देखा। इस समय उसकी दृष्टिसे कृतज्ञता झलक रही थी! शंकररावने फिर पूछा—"क्यों अब मैं आपके घावपर पट्टी बाँध दूँ।"

गोवर्द्धनने सम्मति दे, चौकी पर लेट कर अपना बाँया
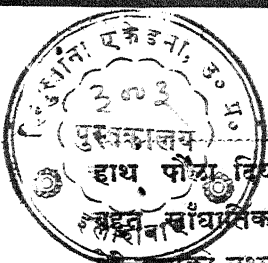
हाथ फैला दिया। शङ्कररावने देखा कि उसका आघात बहुत सांघातिक न होनेपर भी यन्त्रणादायक अवश्य है। मेरे हृदयको लक्ष्यपर शत्रुने जो छुर फेंका था, निशाना चूक जानेके कारण, वह गोबर्द्धनके हाथमें जा लगा। इसके बाद चन्द्रकलाने दीपक उठाया, और शंकरराव उस आहत स्थानपर पट्टी बाँधते बाँधते सोचने लगे, कि इसी समय इसे गिरफ्तार करना चाहिये, या नहीं? कितने ही कारणोंसे उसे उस समय गिरफ्तार न करना ही शंकररावने उचित समझा यदि पट्टी बाँधकर उठ खड़े हुए।

इस बार गोबर्द्धनने अपने कर्कश स्वरको यथासाध्य कोमलकर कृतज्ञता जतायी और उन्हे बैठनेके लिये कहा। चौकीके पास एक टूटी हुई कुर्सी पड़ी थी। गोबर्द्धनके अनुरोध करनेपर शंकरराव उसीपर बैठ गये। अब गोबर्द्धनने अतिथि सत्कारकी इच्छासे चन्द्रकलाको कुछ फल-मूल लानेके लिये कहा। शंकरने बहुत कुछ मना किया, परन्तु गोबर्द्धन न माना। अन्तमें चन्द्रकलाने भी अपने पिताका योग दिया और इशारेसे ही शंकररावको समझा दिया, कि इसमें विष मिलाया हुआ नहीं है।

जलपान करते करते दोनोंमें अनेक प्रकारकी बातें हुईं परन्तु गोबर्द्धनको शंकररावका परिचय कुछ भी मालूम न हुआ। कुछ देर बाद उसने पूछा—"तुम किस तरह इस कुटीमें आ पहुंचे यह मैं अबतक न समझ सका।"

शंकर—इसमें समझनेकी तो कोई बात भी नहीं है।

गोवर्द्धन—अवश्य है। यदि मैं तुम्हारी बातपर विश्वास न करता और बन्दूककी गोलीसे तुम्हारी खोपड़ी उड़ा देता तो तुम क्या करते ?"

शंकर—क्या करता ? कुत्ते बिल्लीकी मौत मर जाता।

गोवर्द्धन—तुम क्या समझते हो, कि मैं दिल्लगी कर रहा हूं ?

इतना कहते कहते गोवर्द्धनकी दोनों आंखें एक अस्वाभाविक तेजसे जल उठी। अब भी शंकरराव वैसेही अविचलित बैठे रहे। उन्होंने निर्भीक स्वरसे कहा—"नहीं, तुम जैसा मनुष्य दिल्लगी नहीं कर सकता।"

चौकीके पासही कोनेमें बन्दूक खड़ी की हुई रखी थी। गोवर्द्धनने एकाएक वह बन्दूक उठा ली और शङ्कररावके सरकी ओर निशाना साधकर बोला—"सुनो अभागे। वास्तवमें मैं दिल्लगी करना नहीं जानता। मैं बड़ा दरिद्र हूं, कुछ रुपयोंकी मुझे बड़ी आवश्यकता है। यदि सौ रुपये मुझे अभी दे दो तो जीवित यहांसे जा सकोगे अन्यथा अभी तुम्हें यमालय भेज दूंगा।

कुटीकी एक ओरसे एक हलकी चीख निकल पड़ी। एकाएक दृश्य परिवर्तन हो जानेके कारण चन्द्रकला, अपनी अवस्था भूल कर आर्तनाद कर उठी। परन्तु आक्रमणकारी या आक्रान्त किसीने भी उस ओर ध्यान न दिया। इतनेपर भी शङ्कररावने किसी प्रकारकी मानसिक उत्तेजना न दिखाकर हँसते हुए

कहा,—"बन्धु ! तुम यह क्या कर रहे हो ? मैंने इतनी चेष्टा कर तुम्हारे हाथके आहतस्थानमें पटी बाँध दी, अब तुम कहते हो, कि एक सौ रुपये दो, नहीं तो मार डालूंगा। मुझे एक परदेशी मुसाफिर समझकर उपहास कर रहे हो ? तुम्हारे देशकी दिल्लगीमें विशेष विशेषता है ।"

गोवर्द्धन—मैं दिल्लगी नहीं करता अन्धे ! मैं सच्ची बात ही कह रहा हूं। या तो रुपये अभी गिन दो। अथवा गोली खाकर यमपुर पधारो। बताओ, शीघ्र बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

शङ्कर—"एक भी नहीं। मैं न तो रुपयेही दिया चाहता और न गोली खाकर परलोक ही सिधारना चाहता हूं।"

इतना सुनकर गोवर्द्धनका विकट मुख और भी विकटतर हो गया। आँखें और भी जल उठीं, तथा उसका हिंस्र स्वभाव और भी हिंसक हो गया। शङ्करराव स्थिर दृष्टिसे उसके चेहरेकी ओर देखते हुए बैठे रहे। गोवर्द्धनने फिर गरजकर कहा,—"अभागे युवक ! अभी मृत्युके लिये प्रस्तुत हो जाओ। एक मिनिटका समय और देता हूं। इसके बाद ही गोली मार दूंगा।"

शङ्करराव अब भी वैसे ही शान्त बैठे रहे, उनके चेहरेपर वैसी ही मुसकुराहट दिखायी देती रही। वे अच्छी तरह जानते थे, कि रुपयेके लोभसे गोवर्द्धन मुझे अवश्य मार डालेगा। तथापि उन्होंने अपने चेहरेपर घबड़ाहटका एक चिन्ह भी प्रकट न होने दिया। बल्कि हँसते हुए कहा—"भाई ! फिर देर क्यों

करते हो ? परन्तु एक बात तुमसे कह देता हूं, बन्दूक छोड़नेसे शब्द अवश्य होगा। परन्तु गोली न निकलेगी। तुम्हारे हाथमें पट्टी बांधते समय कौशलसे मैंने उसकी गोली निकाल दी है, नहीं तो तुम जैसे सत्पुरुषके हाथमें बन्दूक देखकर क्या मैं कभी स्थिर रह सकता था ?"

अबतक गोवर्द्धन स्थिर दृष्टिसे अपने शिकारको और बन्दूकका निशाना साधकर बैठा था। अब क्षणभरके लिये लक्ष्यकी ओरसे उसकी दृष्टि हट गयी। शङ्करराव इस तरह हंस हँसकर बातें करते रहने पर भी मन ही मन अपने छुटकारेका उपाय सोच रहे थे। अतः ज्योंही निशानेकी ओरसे उसकी दृष्टि हटी त्योंही शङ्कररावने उसके हाथकी बन्दूक पकड़कर एक जोरका झटका दिया। बन्दूक उसके हाथसे छूट गयी। इसके बाद पलक मारते ही अपनी जेबसे पिस्तौल निकालकर अत्याचारीकी छातीसे निशाना साधकर, बोले—"स्थिर होकर पड़े रहो। यदि उठनेकी चेष्टाकी—एक अंगुल भी हटे त्योंही इस वज्रनादी, पिस्तौलसे तुम्हारा पापमय जीवन नष्ट कर दूंगा।"

गोवर्द्धन भय विस्मयसे निर्बल हो गया। ऐसे सहजमें इस कौशलसे—इसके पहले कोई कभी भी उसे शस्त्रच्युत या पराजित न कर सका था। उसके विस्मयका वेग जितना ही कम होने लगा, उतनाही वह मन ही मन समझने लगा, कि यह अपरचित कोई साधारण मनुष्य नहीं है।—छलबल कौशलमें

उससे कहीं अधिक बलवान हैं, अधिक साहसी तथा अधिक चतुर है।

गोवर्द्धनने अब एक प्रकारकी विद्रूप हंसी हंसकर कहा "भाई। तुम तो बड़े ही अरसिक हो, मैं तो तुमसे दिल्लगी करता था।"

शंकर—"तुम्हारी इस दिल्लगीको दूरसेही नमस्कार है, परन्तु मैं उपहास नहीं करता। गोवर्द्धन! तुम बड़े अकृतज्ञ हो। जिस मनुष्यसे तुम्हारा कभीका परिचय नहीं, जिसने तुमसे किसी प्रकारकी दुष्टता न कर बड़े आदर और स्नेहसे तुम्हारे हाथके जख्ममें पट्टी बांधी, तुम उसका ही प्राण लेनेको तय्यार हो गये। तुम बड़े पापी और नर्कके कीट हो। मैंने आजतक तुम्हें देखा न था, परन्तु तुम्हारी सुकीर्ति कई बार पहले हीं सुन चुका हूं। लोग तुम्हें गिरहकट गोवर्द्धन कहते हैं—आज तुम्हारे नामकी सार्थकता मुझे मालूम हो गयी।"

गोवर्द्धन—"तुमने अभी कहा है, कि मैं परदेसी हूं।"

शंकर—"ठीक है, इतने पर भी तुम्हारे सभी समाचार मैं जानता हूं। लोग कहते हैं, कि तुम्हें पहाड़में कहीं गड़ा धन मिल गया हैं। जरूरत पड़नेसे वहींसे धन लाकर इस पहाड़ी गांवमें आनन्द करते हो। तुम बड़े भाग्यवान पुरुष हो।"

गोवर्द्धन रुष्टभावसे बोला—"इतनी बातोंसे तुम्हें क्या मतलब है? तुम हो कौन?"

शंकररावने बड़े हर्षसे कहा—"तुम्हारे जीवनकी और भी

बहुतसी बातें मुझे मालूम हैं। तुम्हारा असली नाम गोवर्द्धन नहीं है—तुम इस गांवके रहने वाले भी नहीं हो, किसी दूसरी ही जगहसे यहां आबसे हो।"

गोवर्द्धन—"यह सब तुमसे किसने कहा।"

शङ्कर—"यह बतानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

गोवर्द्धन शङ्काररावकी बातें सुन तथा दृढ़ता देखकर कांप उठा। वह अच्छी तरह समझ गया, कि यह मनुष्य उसका सहज शत्रु नहीं है। वह मन ही मन कुछ सोचने लगा।

शङ्कररावने फिर कहा—"तुम्हारे अतीत जीवनकी बहुत सी गुप्त कहानियां मैं अच्छी तरह जानता हूं। परन्तु आज मैं यहां तुम्हें कष्टमें डालने नहीं आया हूं। तुम्हारा आजका दुर्व्यवहार मैं क्षमा करनेके लिये प्रस्तुत हूं, परन्तु सावधान! यदि अब भी सावधान होकर यह कुपथ न त्यागोगे तो शीघ्र ही तुम्हें अपने उत्पन्न किये हुए पापानलमें दग्ध होना पड़ेगा।

चन्द्रकला चुपचाप खड़ी खड़ी वे बातें सुन रही थी। वह अच्छी तरह जानती थी, कि उसका पिता गोवर्द्धन पैशाचिक प्रकृतिका मनुष्य है—डाकू है। उसके अलावा इस संसारमें उसका अपना कोई नहीं है—उससे स्नेह करनेवाला, उसकी ओर एक बार नेहभरी दृष्टिसे देखनेवाला और कोई नहीं है, इसीलिये अभागिनी उसके सुख दुःखमें समभागिनी हो, उसके भाग्य सूत्रमें अपना भाग्य सूत्र मिला, अन्यभावसे जीवन बिता रही थी। आज गांवमें एकाएक रात्रि

के समय इस युवकको देखकर मानो उसके जीवनके नाट्य मंचपर एक दूसरा ही अभिनव दृश्य आरम्भ हो गया, उसके हृदयमें एक अनास्वादित सुखका सोता आप ही आप बहने लगा।

गोवर्द्धनने कांपते हुए कहा—"मेरे मनमें एक सन्देह उत्पन्न हो गया है।"

शङ्करने कहा—"बताओ स्पष्ट कह दो।"

गोवर्द्धन—"तुम कोई जासूस हो।"

शंकर—"ऐसा ही समझ लो।"

गोवर्द्धन—"तब तुम मेरी कुटीसे कभी जीवित नहीं जा सकती।"

शंकर—"मैं कोई भी होऊँ अपनी रक्षा करनेकी शक्ति मुझमें यथेष्ट है।"

गोवर्द्धन—"देखा जायगा, तुम क्या शंकरराव हो?"

शंकर—कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। उसी समय कुटीके बाहरसे किसीका पद शब्द सुन पड़ा।

गोवर्द्धनका मलिन मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। गोवर्द्धन इसी आगन्तुकके आनेकी राह देखरहा था। बाहर पदशब्द सुनकर उसने साहससे उसी ओर देखा। क्षणभर बाद ही दरवाजा खुला और एक मनुष्य दरवाजेपर आ खड़ा हुआ। गोवर्द्धनकी आंखें उसे देखकर हिंसावृत्तिसे और भी प्रज्वलित हो उठीं।

आनेवाला कोई दूसरा नहीं, उसका प्रथम रात्रिका सहचर और पापकर्मका सहायक मदनजी था।

चौथा परिच्छेद।

मदनजी।

नपतिरावकी मृत्युको छः वर्ष हो गये। इस इतने समयमें इस आख्यायिको पात्र-पात्रियोंके जीवनमें बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया। कालूरायको पकड़नेके लिये सरकारकी ओरसे बड़ी बड़ी चेष्टायें हुईं। परन्तु अबतक कोई भी उसका किसी तरह पता न लगा सका। नाना प्रकारके पुरस्कारोंका प्रलोभन जासूसोंकी कूटबुद्धि और चतुरता तथा पुलिस दलका चातुर्य-जाल—कुछ भी कालूरायका एक बाल बाँका न कर सका। कालूरायका पकड़ना तो दूरकी बात है। इस बातका पता भी किसीको न लगा। कि कालूराय नामधारी व्यक्ति कौन है।

आकाशमें मेंघका नामोंनिशान न रहने और कड़ी धूपसे धरातलके उत्तप्त रहने पर भी जब एकाएक जोरसे बादल गरज उठता है, उस समय प्राणी मात्र जिस तरह चौंक उठते हैं, ठीक उसी तरह कभी कभी कालूरायके आकस्मिक आविर्भावसे लोग चौंक उठते थे। यद्यपि शङ्कररावने जासूस विभागमें प्रवेश कर

इतने ही दिनोंमें अच्छी सुख्य-राति उपार्ज्जन कर ली थी, यद्यपि अन्य कार्योंमें लगे रहने पर भी अपने प्रधान शत्रु कालूरायको गिरफ्तार करनेकी वासना क्षण भरके लिये भी उनके हृदयसे दूर न हुई थी। तथापि अब तक कालूरायका वह कुछ भी बिगाड़ न सके थे। उनकी शक्ति, सामर्थ,योग्यता और अध्यव-सायको दो भागोंमें विभक्त कर एक भाग सरकारी तथा दूसरेके द्वारा कालूरायको गिरफ्तार करनेकी वे बराबर ही चेष्टा किया करते थे।

पूनाका कारबार उठ जानेके कारण शङ्कररावने ताराको नरोत्तम सिंह नामक, अपने पिताके एक सहृदय बन्धुके यहां रखकर जासूस विभागमें प्रवेश किया था।

नरोत्तम सिंह उनके पिताके बड़े ही स्नेही और शिवनिवास के एक विख्यात धनी व्यवसायी थे। नरोत्तम अपने बन्धुकी कन्याका अपनी कन्याके समान ही लालन-पालन करते थे। जब अवसर मिलता था। तब शङ्करराव वहाँ आकर उसे देख जाया करते थे।

लक्ष्मीपतिने बसन्तपुर नामक स्थानमें रेशमकी कोठीमें नौकरी कर ली थी और चार वर्षतक नौकरी करने बाद उसे त्याग कर दलाली करने लगे थे। कुछ सम्पत्ति भी उन्होंने एकत्र कर ली है नरोत्तम सिंहके साथ उनकी भी अच्छी घनि-ष्टता हैं और वे भी कभी कभी शिवनिवास आया करते है। उनके सरल व्यवहारसे सभी उनसे प्रसन्न हैं।

नरोत्तमके परिवारमें भी बहुत थोड़े मनुष्य हैं। उन्हें कोई पुत्र नहीं है। एक कन्या है वह भी विवाह हो जानेके कारण अब ससुरालमें रहती है। इस समय उनकी स्त्री, एक भतीजा और कुछ दास-दासियाँ ही उनके परिवारिक मनुष्य हैं। उनके भतीजेका नाम केशव सिंह है।

तारा यहां बड़े आरामसे रहती है। सभी उससे स्नेह करते हैं, वह भी सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करती है। केवल केशव उसे नहीं सुहाता। परन्तु केशव उसके लिये उन्मत्त होरहा है। उसके रूप पर वह पतङ्गके समान प्राण देनेके लिये तय्यार हैं।

केशव सुन्दर और सुश्री नव-युवक है। परन्तु हृदयकी गति-प्रेमका पथ कुछ दूसरा ही होता है। ताराको उसकी बातें अच्छी नहीं लगती। उसकी आकुलता और प्रेमवर्णना उसे अच्छी नहीं लगती। उसकी दृष्टि ताराको सुखकर नहीं बल्कि हृदय-वेधिनी मालूम होती है। तारा उसपर विश्वास नहीं कर सकती। सब प्रकारसे सुखी रहने पर भी केशवसिंह ताराके सुख-पथका कण्टक हो रहा हैं।

जिस दिन उस पहाड़ी पथपर शङ्करराव पर दुर्वृत्त डाकुओं ने आक्रमण किया था। उसी दिवस संध्याके समय जब बसु-न्धराने अपना शरीर छिपानेके लिये, मलिन अम्बर धारण किया अर्थात् गोधूलि समय, तारा सड़क किनारेकी एक खिड़की पर आ बैठी। आज उसका मुख कुछ विशेष मलिन था।

इसी समय तेजीसे आकर एक मनुष्य उस खिड़कीके नीचे खड़ा हो गया। और खिड़कीकी ओर देखकर बोला—स्वयं यहाँ बैठी बैठी क्या कर रही हो ?"

आनेवाला ताराका परिचित था। उसका नाम था, तिनुवा वह भील जातिका मनुष्य था। जङ्गलमें घूमघूमकर शिकार करना ही उसका व्यवसाय था ;

ताराने प्रसन्नतासे कहा—"हाँ बैठी हूं। तुम कहाँ जा रहे हो ?" तिनुवा बोला—"तुमसे एक बात पूछने आया हूं। आज शङ्कर भय्याके आनेकी बात हैं न ?"

तारा बोली—"कुछ ठीक नहीं हैं। आ भी सकते हैं और नहीं भी।"

तिनुवा—"यदि आयें तो मेरे मकान पर अवश्य भेज देना। भूलना नहीं। शङ्कर भय्या आज अवश्य ही आवेंगे।"

तारा—"जरूर भेज दूँगी। नहीं भूलूँगी।"

तिनुवा चला गया। इसी समय एक दूसरा मनुष्य वहाँ आकर खड़ा हो गया। इस बार जो आया, वह युवक और सुन्दर था। उसकी अवस्था लगभग पच्चीस वर्षकी और और नाम धनेश्वर था।

शिवनिवास व्यापारका स्थान है। यहाँ कितनी ही जाति और कितने ही स्थानोंके मनुष्य व्यवसायके लोभसे आकर बसा करते हैं। कारबारके विचारसे कितने ही प्रकारके मनुष्योंको, यहाँ किसीको एक रात, किसीको दो चार दिनोंतक भी रहना

शोभा न दे सकीं। बोला—"बुरा तो नहीं है। यदि मेरा नाम धनेश्वर न भी हो, तो भी कोई हानि नहीं है। परन्तु है क्या ?"

तारा—"यह सब उसने कुछ नहीं बताया। मालूम होता है कि जानता भी नहीं।"

धनेश्वर—"इस बार किसी दिन आकर कहेगा कि यही वह पाजी कालूराय है।"

तारा—"यदि कभी कहेगा तो मैं उसे झूठा भी प्रमाणित कर दूँगी।"

युवक युवती बातोंमें उलझ रहे थे। युवककी पीठ दरवाजेकी ओर थी। न जाने कौन उसके पीछेसे जोरसे उपर्युक्त बात कह उठा। युवकने चौंककर पीछेकी ओर देखा। सुन्दरी की आंखें भी दरवाजेकी ओर जा लगीं। दरवाजे पर एक अपूर्व मूर्त्ति खड़ी थी। मूर्त्ति सरसे पैर तक काले कपड़ेसे ढकी थी—हाथमें एक गोली भरी पिस्तौल थी।

आगन्तुक विख्यात डाकू कालूराय था।

क्षण भरके लिये किसीके मुँहसे कोई शब्द न निकला। आज तक सैकड़ों सुदक्ष पुलिस कर्म्मचारी, इतनी चेष्टा करनेपर भी जिसका सन्धान न पा सके थे। उसी नरहन्ता, परधनहारी डाकूको एकाएक सामने देख कर दोनों ही चौंक उठे। धनेश्वर साहसी अथच बलिष्ट युवक था; परन्तु डाकूके हाथमें पिस्तौल देखकर वह भी आगे बढ़नेका साहस न कर

सका।" तारा बालिका ही ठहरीं—वह फिर क्या करतीं ? जो मनुष्य उसका सब धन लूटकर उसे पथकी भिखारिनी बना गया। उसे सामने देखकर भी पद-दलित करनेका सामर्थ्य न रहनेके कारण उसका क्रोध उसे ही दग्ध करने लगा।

कालूराय कुछ देर तक चुपचाप युवक-युवतीके चेहरेकी ओर देखकर बोला—"क्या तुम लोग अतिथि-सत्कार करना भी नहीं जानते ? जो हो, मैं तुम दोनोंको बैठने कहता हूं। मेरे मित्रों बैठो, घबड़ाओ मत, तुम लोगोंसे दो बातें कर लूं।"

धनेश्वर—"तुम कौन हो ? तुमने यह अपूर्व वेश क्यों बनाया है ?

कालूराय—"मेरा नाम कालूराय है, क्यों तुमलोगोंने क्या मेरा नाम नहीं सुना है ?"

धनेश्वर—"तुम इस स्थानपर आकर भी अपना परिचय देनेमें कुण्ठित नहीं होते ?

कालू—"ऐसी तो कोई आवश्यकता नहीं है।"

धनेश्वर—"तुम शायद भूल गये हो, कि तुम्हें पकड़नेके लिये पुलिस दिनरात फेरा लगाया करती है। शायद, अपनेको गिरफ्तार करा देनेके लिये ही यहां आये हो ?"

कालू—"तुम क्या पागल हो गये हो ?"

धनेश्वर—"तुमने अपनी इच्छासे शेरकी मांदमें प्रवेश किया है। अब यहांसे भाग न सकोगे।"

कालू—"कौन रोकेगा ?"

धनेश्वर—"मैं।"

कालूराय ठठाकर हंस पड़ा। यह विद्रूपकी हंसी थी। इस हंसीका अर्थ समझकर धनेश्वररावने कहा—"इसमें सन्देह नहीं कि इस समय तुम्हारी पिस्तौलके भयसे मैं आगे नहीं बढ़ सकता, परन्तु जाओगे, किस तरह, मुँह फेरते हो मैं तुम्हें धराशायी करूँगा। मैं तुम्हारी शारीरिक शक्तिसे नहीं डरता' —तुम्हारे हाथकी पिस्तौल ही मेरे पथकी बाधक हो रही है।"

कालूरायने फिर हंसकर कहा—"युवक! तुम्हारे जैसा जिसका सुन्दर शरीर है, उसके मुँहसे ऐसी विषैली बात अच्छी नहीं लगती। धनेश्वर! तुमसे मेरी किसी प्रकारकी शत्रुता नहीं है, तुम्हारा मैंने कभी कोई अनिष्ट भी नहीं किया—अतः तुम्हारे सामनेसे बिना किसी अत्याचार सहन किये जानेकी यदि मैं कल्पना करूँ, तो असंगत न होगा। इतने पर भी यदि तुम मेरे विपक्षमें खड़े होकर, शत्रुता करने पर तय्यार हो जाओ तो मेरे पास एक ऐसा अभिमन्त्रित बाण है, कि जिसके छोड़ते ही तुम शक्तिहीन और निस्तेज हो जावगे। मेरे उस बाणका नाम है—"कुबेर।"

हृदयमें तीक्ष्ण धार छुरी बिंध जानेपर मनुष्य यन्त्रणासे जिस तरह छटपटाने लगता है, धनेश्वर भी कालूरायका वह संकेत शब्द सुनकर वैसा ही तड़प उठा। वह डगमगाकर दीवारसे जा सटा। यह देखकर कालूरायने ताराको लक्ष्य करते हुए पूछा—"तुम्हारे भाई कहां हैं सुन्दरी?"

तारांने भयभीत स्वरसे कहा—"घरमें नहीं है ।"

कालूरायने कहा—"मेरा दुर्भाग्य । मैं एकबार उनसे मिलने आया था और मेरी धारणा है, कि वे भी एक वार मुझसे भेंट करनेके लिये बड़े चिन्तित हो रहे हैं ।"

ताराने कुछ उत्तेजित स्वरमें कहा—"बल्कि ऐसा समझ लो कि तुम्हारे ग्रह देवता अभी तुम पर प्रसन्न है, इसीसे उनसे भेंट नहीं होती । तुम जैसे महाजनसे मिलनेके लिये ही उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है ।"

कालू हंसकर बोला,—"सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ । मैं उनसे मिलनेका एक प्रबन्ध कर जाता हूं । आगामी पूर्णिमाके दिनमें सूर्य्यास्तके समय भद्रगिरिकी तराइमें मैं उनकी राह देखता बैठा रहूंगा ।"

तारा विस्मयसे चुप रह गयी । धनेश्वर फिर गरज उठा । डाकू भी उसकी ओर मुँह फेरकर खड़ा हो गया और गम्भीर स्वरमें बोला—"धनेश्वर ! मालूम होता है कि अब भी तुम्हारी दुर्बुद्धिता दूर न हुई यदि अन्य मनुष्योंके समान ही मेरा हृदय हिंसा-परवश होता, तो इसी समय इस सरला बालिकाके कानमें एक ऐसी बात कह देता, जिससे तुम्हारे भाग्यका सोता दूसरी ही ओर बहने लगता । वन्धु ! मेरे वर्त्तमान पापका विषय परित्याग करो और अपने जीवनकी अतीत घटनाओंका स्मरण करो—इससे तुम्हारा परलोक सुधर जायगा ।"

इतना कहकर कालूराय पीछे हटने लगा । धनेश्वरकी ओर

धनेश्वर—"सवेरे केशवने जो कुछ कहा था, इस समय कालूरायने भी वही कहा है । दोनोंकी ही बातोंसे मालूम होता है, कि अपने जीवनमें मैंने कोई भयङ्कर पाप किया है । दो मनुष्यों की कही हुई एकही बात झूठी नहीं हो सकती । अतः तुम्हारी दृष्टि में भी मैं अवश्य ही घृणित पापी हूं ।"

तारा—"असम्भव, मैं उनकी एक भी बात पर विश्वास नहीं कर सकती ।"

धनेश्वर—"ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करे; परन्तु तारा! यदि कोई दुर्घटना हुई तो क्या तुम अपना मन स्थिर रख सकोगी ? क्या मुझपर तुम्हारा ऐसा ही अविचिलित विश्वास रहेगा ?"

तारा—"रहेगा । रमणीका विश्वास, नारीका प्रेम पापीके दुर्वाक्यसे दूर नहीं हो सकता ।"

ताराके अनन्त विश्वाससे उत्साहित होकर धनेश्वरने कृतज्ञता प्रकाश करते हुए कहाः—"मैं शपथकर कह सकता हूं, कि आजतक मुझसे कोई महापातक नहीं हुआ है । परन्तु मेरे प्रथम जीवनमें सचमुच ही कलङ्क-कालिमाका एक धब्बा लगा है । मेरा भाग्य बुरा है, मुझपर अत्याचार हुए हैं, मैं अत्यन्त अत्याचार पीड़ित हूं, परन्तु किसी प्रकारसे अपराधी नहीं हूं । अपने जीवनकी वह कलङ्क-कथा एक दिन अवसर मिलनेपर तुम्हें सुनाऊँगा । जबतक वह अवसर नहीं आता, तबतक तुम्हारा हाथ धरकर कहता हूं, सुन्दरी ! कि मुझे क्षमा करना ! मुझे सन्देहकी दृष्टिसे न देखना ।"

इतना कहते कहते धनेश्वरकी आंखोंमें जल भर आया और फिर उससे बोला न गया। बहुत कुछ चेष्टा करनेपर उसने रूंधे-स्वर और कम्पित-कण्ठसे कहा—"तारा! इस संसारमें मुझे तुम्हारा ही भरोसा है। इसीलिये कहता हूं, कि तुम भी मुझे अपने चित्तसे न उतार देना!"

ताराने भी उसी तरह आंखोंमें जल भरकर कहा—"यथेष्ट हो गया। तुमपर मेरा अनन्त विश्वास है, यदि तुम समझ सकते हो, कि मेरा प्रेम कितना निर्मल, कितना गम्भीर तथा कितनी दूरतक पहुँचा हुआ है, तो तुम ऐसी बात अपने मुखसे न निकालते। परन्तु क्या मेरे एक प्रश्नका उत्तर दोगे?"

धनेश्वर—"एकका क्यों, सैकड़ों पूछ लो।"

तारा—"तब क्या तुम्हारा असली नाम धनेश्वर नहीं है?"

धनेश्वर—"नहीं, अब इस समय मुझसे और कुछ न पूछना, मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि मैं तुमसे कोई बात न छिपाऊँगा। सब बता दूँगा। तुम्हारे गहरे प्रेम और स्वाभाविक प्रीतिके उपयुक्त बननेके लिये मैं यथासाध्य प्राणपणसे चेष्टा करूंगा।"

बगलमें एक बेहोश मनुष्य पड़ा हुआ है, उसकी खयाल इन बातोंकी झोंकमें हवा हो गयी। एकाएक किसीने कहा—

"देवताओंके भाग्यमें अमृत और असुरोंके भाग्यमें सदा ही विष अथवा पिस्तौलकी गोली बदी रहती है।"

युवक-युवती दोनों ही चौंक उठे लज्जासे नत-मु[illegible] तारा जोरसे कमरेसे भाग गयी। होशमें आकर रत्नेश्वरको [illegible]पापर

बैठते देखकर सलज्ज भावसे धनेश्वरने कहा—"तुम्हारे लिये बड़ा ही चिन्तित हो रहा था। अब तो अच्छे हो?"

रत्नेश्वरने झल्लाकर कहा—"अच्छा क्या खाक हूं। अभी तक सरमें चक्कर आ रहा है। उसे कहां कैदकर रखा है?"

धनेश्वर—"वह भाग गया।"

रत्नेश्वर—"भाग गया! तब तो बड़ा साहसी मनुष्य है। संध्याके समय गृहस्थके मकानमें चोरी करने घुसा था।"

धनेश्वर—"जानते हो, कि वह कौन है?"

रत्नेश्वर—"नहीं।"

धनेश्वर—"कालूराय, वही पहाड़ी डाकू!"

आश्चर्य्यसे रत्नेश्वर उछल पड़ा और भयसे उसका मुँह सूख गया। वह कठिनतासे बोला,—"क्या कहते हो? कालूराय को पकड़ा था?" रत्नेश्वर थर थर कांपने लगा। धनेश्वरने हंसकर कहा—"क्यों, यदि पहलेसे उसका नाम मालूम होता तो क्या उसे न पकड़ते?"

रत्नेस्वर—"पकड़ता? उससे सौ गज दूर ही रहता। मैंने उसे कोई दूसरा ही चोर डाकू समझ लिया था।"

धनेश्वर—"तुम क्या मुझे बुलाने आये थे?"

रत्नेश्वर—"हां, मालिकने तुम्हें बुलाया है।"

फिर विलम्ब न कर दोनों, दुर्गा-सदनमें जा पहुंचे। रत्नेश्वर होटलके सब मनुष्योंको एकत्रकर उनके सामने नाना प्रकारकी बातें करने लगा, कितने ही प्रकारसे अपनी बहादुरीका

बखान् करने लगा। कालूरायका नाम सुनकर सभी भय विस्मयसे अवाक् हो गये।

इधर धनेश्वर बहुत रात गये तक होटलके हिसाब-किताब की जांच करता रहा। उसका भी चित्त आज शान्त न था। उसने आज कुछ खाया भी नहीं और अपने कमरेमें जाकर सो रहा। वह शय्यापर बैठकर मन ही मन सोचने लगा,—"दुर्भाग्य छाया की भांति मनुष्यके पीछे पीछे दौड़ता फिरता है। स्वदेशके, अपने-परायेकी ममता त्याग, इतनी दूर इस पहाड़ी स्थानमें निर्व्वासितकी नांई रहता हूं। मन ही मन सोचा था, कि नाम बदलकर इस स्थानके लोगोंकी भक्ति-श्रद्धा उपार्ज्जनकर आनन्दसे दिन बिता दूंगा। परन्तु न जाने केशव और कालूराय को किस तरह मेरे अतीत जीवनकी गुप्त कथा मालूम हो गयी। कालूराय तो मेरा असली नाम भी जानता है। अब उपाय? क्या यह स्थान छोड़कर भी भाग जाऊँ? फिर जाऊँ तो कहाँ जाउं? कहां जाकर आश्रय लूंगा। अब जहां जाऊंगा, वहां तो तारासे भेंट न होगी। हाय! मैं भी कैसा अभागा हूं, बिना अपराधके मुझ जैसा और भी कोई इस तरह निर्वासित होता होगा?. और, डाकू या खूनी असामीकी भाँति मुझे प्राणभयसे इधरसे उधर भागना पड़ता है।"

एकाएक उसकी दृष्टि शय्यापर रखे हुए एक पत्र पर जा पड़ी। उसने कांपते हुए हाथसे वह कागज उठा लिया, उसमें निम्नलिखित कई पंक्तियां लिखी थीं।

"रत्नेश्वर तिवाड़ी! जितना शीघ्र सम्भव हो, तुम यह स्थान त्यागकर भाग जाओ। आजसे तीन दिनके भीतर यदि यह गांव छोड़कर तुम न चले गये, तो तुम्हारी मृत्युको कोई टाल नहीं सकता। इसे केवल भयप्रदर्शन समझकर चुप न हो बैठना—समय रहते तुम्हें सावधान कर दिया।"

षट्चन्द्र।

धनेश्वरके कांपते हुए हाथसे पत्र गिर पड़ा। यह कैसा पत्र है? उसके विड़म्बित भाग्यपर यह दूसरा कौनसा वज्रपात हुआ? ये गुप्त शत्रु कौन हैं? इस षटचन्द्रके चक्री उसका जीवन लेनेके लिये क्यों तय्यार हैं। बहुत देरतक वह मन ही मन सोचता रहा। परन्तु कुछ भी समझ न सका।

छठा परिच्छेद ।

तिनुआ ।

दनजीको देखते ही गोवर्द्धनका साहस बढ़ गया। उसके चेहरेपर आनन्दकी छटा छितरा गयी। शङ्करराव‌ने यह अच्छी तरह देख लिया कि इस आगन्तुकको देख कर गोवर्द्धन मन ही मन प्रसन्न हो रहा है। वे यह भी समझ गये, कि गोवर्द्धन इस मनुष्यकी ही राह देख रहा था और यह आनेवाला मदनजी ही है। साथ ही उनके मनमें यह सन्देह भी उत्पन्न हो गया, कि सम्भव है, कि आक्रमणकारियोंमें मदन जी भी सम्मिलित हो, जिसका आज छः वर्षोंसे वह इस तरह पीछा कर रहे थे, वही आज उनका प्राण लेनेको प्रस्तुत हुआ था। शङ्कररावने स्थिरकर लिया, कि मदनजी ही इस दलका नेता है।

मदनजीको देखकर सहायता पानेकी आशासे गोवर्द्धनकी आंखें प्रदीप्त हो उठीं, परन्तु शङ्कररावपर दृष्टि पड़ते ही मदनजीका चेहरा उतर गया, वह अन्धकारमें अपनेको छिपानेकी चेष्टा करने लगा।

चन्द्रकला इस समय अत्यन्त चिन्तित हो उठी। उसकी कातर दृष्टि एक एक बार उपस्थित पुरुषोंके चेहरेपर पड़ने लगी। भीता, व्यथिता, युवतीने अब युवकके जीवनकी आशा त्याग दी और एक कोनेमें खड़ी होकर थर थर काँपने लगी।

मदनजी अपनेको छिपा न सका। शङ्करराव की दृष्टि उसपर जा पड़ी है, यह वह भी अच्छी तरह समझ गया। अब दूसरा उपाय न देख, उसने आगे बढ़कर कहा—"बड़ी प्यास लगी है? क्या आपलोग कृपाकर थोड़ा जल पिला देंगे!"

अब भी शङ्करकी पिस्तौल गोवर्द्धनकी छाती भेद करनेके लिये प्रस्तुत थी। उन्होंने मदनजीको देखकर कहा—"क्यों मदनजी! आइये, आइये, बैठिये। आप इस मनुष्यको पहचानते हैं?"

मदनजीने कहा—"नहीं।"

शंकर—"आइये, इनसे आपका परिचय करा दूँ। इनका नाम गोवर्द्धनराव हैं—ये मेरे एक पुराने मित्र हैं।"

इस तीव्र श्लेषसे गोवर्द्धनके सरसे पैरतक आग लग गयी। मदनजीको अपनी सहायता न कर चुपचाप खड़े रहते देख, वह और भी क्रोधित हो उठा। क्रोध और क्षोभसे उसका सर्वाङ्ग जल उठा।

मदनजीने कहा—"मैं यहां अधिक देरतक ठहर नहीं सकता। मुझे गांवमें एक बड़ा जरूरी काम है—मैं जाता हूं।" इतना कहकर मदनजी उठ खड़ा हुआ।

शङ्करराबने कहा,—"यह क्या ? जल पीकर जाइये । जल पिये बिना चले जानेसे गृहस्थको पाप लगेगा ।"

मदनजी सुनकर बड़ा ही विचलित हुआ । इसी समय चन्द्र-कला जल लेकर आ पहुंची । मदनजीने जल पी लिया । अब शङ्करराबने कहा,—"चलिये, मैं भी गांवमें ही जाऊँगा ।" इसके बाद गोवर्द्धनकी ओर देखकर बोले—"अब मैं जा सकता हूं ?"

गोवर्द्धनने कहा—"हां ।"

अब मदनजीके साथ शङ्करराव शिवनिवासकी ओर चले । राहमें दोनोंमें अनेक प्रकारकी बातें हुई ; परन्तु रात्रिके आक्रमण वा गोवर्द्धनके सम्बन्धमें और कोई भी बात न हुई ।

शिवनिवास पहुंचकर मदनजी दुर्गा-महलमें चले गये और शङ्करराव मन ही मन सोचने लगे, कि कहाँ चलना चाहिये । बहुत कुछ सोच-विचार कर वे तिनुआके मकानकी ओर रवाना हुए ।

पहाड़ी भील होनेपर भी तिनुआका हृदय अनेक गुणोंसे विभूषित था । इसी कारणसे शङ्करराव उससे अत्यन्त स्नेह करते थे और वह भी शङ्कररावको बहुत आदरकी दृष्टिसे देखता था ।

तिनुआ भी गांवके बाहर ही रहता था । शङ्कररावने वहां जाकर देखा कि दरवाजेमें ताला बन्द है । वह जानते थे, कि चाभी कहां रखी रहती है । उन्होंने दरवाजा खोलकर बत्ती जलायी । बत्ती जलाते ही उन्हें एक पुर्जा पड़ा दिखाई दिया ।

बड़े कष्टसे शङ्करराव समझ सके, कि यह तिनुआका ही लिखा हुआ है। अब वे उस पत्रको पढ़नेकी चेष्टा करने लगे। उसमें लिखा था—"ऊपर जाता हूं—शीघ्र राह देखना।"

शङ्करराव लिखावट पढ़कर हंस पड़े। मैं ऊपर जाता हूं का मतलब तो उनकी समझमें आ गया। परन्तु "शीघ्र अपेक्षा करो" वाली बात समझमें न आयी। बहुत देरतक माथा लड़ानेपर जब मतलब समझमें आया तो वे कुछ चिन्तित हुए पहिले बहुत कुछ सोच विचार करने बाद, वे उसी तरह ताला बन्द कर पहाड़पर चढ़ने लगे।

रात्रि अन्धेरी होनेपर भी आकाश निर्मल था और असंख्य तारागण न जाने किसकी राह देखते, अपनी रूप-शिखा छिटकाते हुए बैठे थे। तिनुआ बड़ा सौन्दर्य-प्रेमी था। वह नैश-प्रकृतिको गम्भीर शोभा निरखता हुआ पहाड़पर चढ़ने लगा। पृथ्वीकी अपेक्षा पहाड़पर गरमी कम थी। वह जितना ही ऊँचा चढ़ता गया, शीतल पवनके झपेटोंने आकर उतना ही उसका समस्त शरीर स्निग्ध तथा मन प्रफुलित कर दिया।

इस समय चारो ओर निस्तब्धता छा रही थी। विश्व-ब्रह्माण्ड नीरव हो रहा था। तिनुआ निर्भीक पहाड़ी था, इसीलिये निर्भय चित्तसे आगे बढ़ता चला जाता था। एकाएक कुछ दूरपर पहाड़की चोटीके पास, उसे एक मनुष्य मूर्तिसी दिखायी दी। परन्तु रात्रि अन्धकार मयी तथा पर्वत शिखर दूर रहनेके कारण, वह कुछ स्थिर न कर सका, कि यह प्रकृतिका कोई खेल है

अथवा वास्तवमें कोई मनुष्य खड़ा है । उसके मनमें बड़ा कुतूहल उत्पन्न हो गया। तिनुआ द्रुत पदसे उसी ओर रवाना हुआ।

परन्तु उस स्थानपर पहुंचनेपर उसे वहां कोई दिखायी न दिया। इतनी दूरसे जो पदार्थ मनुष्य आकृति जैसा दिखायी देता था, वहां पहुंचनेपर वह उसे दिखायी न दिया, कि वह अवश्य ही कोई मनुष्य था ।

एकाएक कुछ दूरपर उसे किसी मनुष्यका पद शब्द सुन पड़ा। तिनुआ ध्यानसे उस शब्दको सुनने लगा। धीरे धीरे शब्द बन्द होता गया। अब विलम्ब न कर. तिनुआ तेजीसे उसी ओर रवाना हुआ, जिधरसे शब्द आ रहा था । कुछ दूर आगे बढ़नेपर उसने देखा, कि उसके आगे आगे एक मनुष्य जा रहा है, परन्तु अन्धकारके कारण वह उसे पहचान न सका।

वह मनुष्य एक प्रशस्त उपत्यकामें जाकर एक स्वच्छ शिला-खण्डपर बैठ गया। इस अन्धकारमयी अर्धरात्रिके समय निर्जन पहाड़ी स्थानमें यह मनुष्य कौन है? उसके भावसे ऐसा मालूम होता था मानो वह किसीकी राह देख रहा है। तिनुआ भी उसका पता लगानेके लिये चुपचाप एक वृहत शिलाखण्डके पीछे बैठ गया। अधिक देर तक उसे राह न देखनी पड़ी। कुछ ही देर बाद कई मनुष्योंका कण्ठ-शब्द सुन पड़ा। उनके पास आने पर तिनुआने देखा कि तीन मनुष्य हैं। इन तीनोंको देखकर वह पहला मनुष्य भी उठ खड़ा हुआ।

उन तीनोंमें से एकने कहा—"तुम आ गये हो? खोहमें क्यों न गये?"

पहला बोला—"जाने के लिये ही बाहर निकला हूं, जरा विश्राम करनेके लिये यहां बैठ गया।"

अब सभी उस शिला-खण्डपर बैठ गये। तिनुआ कान लगा कर उनकी सब बातें सुनने लगा। पहले पूछनेवालेने फिर पूछा—"धनेश्वरका क्या समाचार है? उसके सम्बन्धमें और कुछ मालूम हुआ?"

दूसरेने कहा—"विशेष कुछ नहीं इतना ही मालूम हो सका है कि वह भागा हुआ अपराधी है। वारण्टके भयसे यहां भाग आया है। उसे पकड़नेके लिये दो जासूस यहां भी आ पहुँचे हैं।"

पहलेने फिर पूछा—"धनेश्वर ही वह भागा हुआ आसामी है, समाचार देनेवाला इस सम्बन्धमें कुछ निश्चय रूपसे बता सका है?"

उत्तर मिला—"हां, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

पहला—"तब इस बातका पता लगाना पड़ेगा, कि वे दोनों जासूस कौन हैं। धनेश्वरका असली नाम क्या है और उसका अपराध क्या है?"

उत्तर—"यह जाननेका उपाय नहीं है, क्योंकि इस सम्बन्धमें यदि कोई कुछ बता सकता है, तो पुलिस वाले ही और उनका हमारा सांप छछूंदरका सा सम्बन्ध है।"

पहलेने कुछ सोचकर कहा—"तुमने ठीक ही कहा है। इसके अतिरिक्त मुझे मालूम होता है कि व्यक्तिगत स्वार्थ-साधनके लिये सरदार इन बातोंका पता लगा रहे हैं। हमारे दलसे और इन बातोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। क्यों सोमेस्वर?

शेषोक्त तीन मनुष्योंमें एकका नाम सोमेश्वर था। वह बोला —"ठीक ही कहते हो। व्यक्तिगत स्वार्थके साथ इस षट्चक्र का कोई सम्बन्ध नहीं है। विशेषकर षट्चक्रके हाथमें इस समय कई जरूरी काम हैं उन सबको त्यागकर धनेश्वरका पता लगानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जो अब तक सब प्रश्नोंका उत्तर दे रहा था, वह बोला—" उधरका क्या समाचार है? रुपये ठीक......

बाधा देकर पूछनेवालेने कहा—"यहां उन बातोंको निकालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। खुले मैदानमें षट्चक्रका नाम लेना भी ठीक नहीं। कन्द्रामें चलो, सरदारने भी आने कहा है, वहीं सब बातें होंगी।"

सोमेश्वर—"चुप।"

एकाएक तिनुआं कांप उठा उसकी असावधानताके कारण क्या किसी प्रकारका शब्द हो गया? उसे अधिक विचारनेका समय भी न मिला। सोमेश्वर शिकारी कुत्तेकी भाँति उसपर झपट पड़ा और 'जासूस है! गोली मार दो, धरो, पकड़ो' कहकर चिल्ला उठा।

ऊपर चढ़ते हुए शङ्कररावने एकाएक देखा कि आगे आगे एक मनुष्य भागता जाता है और कितने ही मनुष्य उसका पीछा करते हुए आगे बढ़ते चले आते हैं। इसी समय पीछा करनेवालोंने भागनेवालेको पकड़नेमें असमर्थ होकर गोली चलायी। शङ्कररावके मनमें एक प्रकारका सन्देह हुआ—भागने वाला उन्हें परिचित सा दिखायी पड़ा। उन्होंने अपनी पिस्तौल निकाल चिल्ला कर कहा--"तिनुआ! तिनुआ!!

भागनेवाला स्तम्भित होकर खड़ा हो गया। उन्होने फिर पुकारा—"तिनुआ इधर आओ, मैं हूं शङ्कर।"

तिनुआ पहाड़ी कुत्तेकी तरह वेगसे उनकी ओर ही चल पड़ा। पीछा करने वाले अब भी उसका पीछा करते हुए आगे बढ़ते चले आते थे। यह देख शङ्कररावने अपनी पिस्तौल से 'खाली आवाज की। जिससे डरकर वे भाग गये।

तिनुआने अब शान्त होकर कहा—"भय्या! तुम बड़े अवसरपर आ पहुँचे। मेरी बन्दूक एक नली है, वे चार मनुष्य थे मेरा तो प्राण बच गया।"

शङ्कररावने पूछा—"वे कौन थे?"

तिनुआ,—"ठीक नहीं बता सका। षट्चक्रका नाम सुना है।"

शङ्कर—"षट्चक्र।"

तिनुआ—"हाँ, उनका एक दल है। जिसका नाम षट्चक्र है।" इसके बाद तिनुआने जो कुछ सुना था, एक एक कर कह

सुनाया। परन्तु शङ्कररावं कुछ भी न समझ सके, कि वे कौन हैं, और उन्होंने अपने दलका ऐसा विचित्र नाम क्यों रखा है। वे बोले,—"तिनुआ! आजसे मेरे ऊपर एक नया कार्य-भार आ पड़ा। अब मैं कुछ दिनों तक शिवनिवासमें रहूंगा। और तुम्हें शीघ्र ही बताऊंगा, कि इस षट्चक्रमें कौन कौन सम्मिलित हैं।

सातवां परिच्छेद।

भाई बहन।

तिनुआको विदाकर शङ्करराव बराबर नरोत्तमके मकानकी ओर रवाना हुए। नरोत्तमके मकानमें जानेकी राह दुर्गा-भवनके सामनेसे ही थी। रात अधिक हो जानेके कारण दुर्गा-भवनका दरवाजा बन्द हो गया था। शङ्कररावने एकाएक इस स्थानपर आकर आँखें उठा दुर्गा-भवनकी ओर देखा। इतनी रात गये भी धनेश्वरके कमरेमें रोशनी जल रही थी। यह देखते ही धनेश्वरके सम्बन्धमें तिनुआकी कही हुई बातें उन्हें स्मरण हो आयीं।

धनेश्वर ताराका भावी पति था। यह बात किसीसे छिपी न थी, कि दोनोंके हृदयमें प्रणय उत्पन्न हो गया है।

धनेश्वर देखनेमें सुन्दर तथा बुद्धिमान था। शङ्करराव भी उसे स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे। ताराको उसके हाथोंमें सौंपनेमें उनकी भी अनिच्छा न थी। परन्तु आजकी घटना सुन, उनके मनमें सन्देहका कीड़ा उत्पन्न हो गया। वे मन ही मन सोचने लगे—क्या वास्तवमें धनेश्वर किसी गुरुतर अपराधका अपराधी है। वारण्टके कारण भागा हुआ असामी है। असम्भव नहीं है। इस संसारमें क्या असम्भव कहला सकता है। सोनेके घड़ेमें भी विष रह सकता है। जासूस-जीवनमें उनकी अभिज्ञता जितनी ही बढ़ती जाती थी, लोगोंकी प्रकृतिका उन्हें जितना ही ज्ञान हुआ जाता था, उतना ही उन्हें मानव-हृदयकी कालिमाका पता लगता जाता था। वह अच्छी तरह समझते जाते थे, कि बाहरी आकार देखकर किसीपर निर्भर नहीं किया जा सकता। कुछ भी हो, जब ताराका भाग्य-सूत्र, सुख, दुःख, लाभ-हानि उसीके चरित्रपर निभर करता है, तब एकबार उसकी जाँच कर लेना भी परमावश्यक है। विवाहके पहले उसके अतीत जीवनकी घटनाओंपर पड़ा हुआ परदा एकबार उठा देना बहुत जरूरी है।

वे इसी तरहकी कितनी ही बातें सोचते हुए नरोत्तमके मकानपर आ पहुंचे। इतनी रातमें भी नरोत्तमके मकानके सभी मनुष्य जाग रहे थे और एक स्थानपर एकत्रित हो, किसी विषयपर विचार करते रहे थे। उन्हें देखकर सबका विषण्ण मुख मानो क्षणभरके लिये प्रसन्न हो गया। शङ्करराव उनका

चेहरा देखकर ही समझ गये, कि यहाँ भी कोई दुर्घटना अवश्य हुई है। घरके सभी वहाँ उपस्थित थे, केवल केशव न था।

ताराने उन्हें देखते ही प्रसन्न होकर कहा,—"भय्या! तुम आ गये, यह अच्छा ही हुआ। हमलोग तुम्हारे विषयमें ही सोच रहे थे।"

शङ्कर—"क्यों, क्या हुआ है?"

तारा—"आज कालू राय यहाँ आया था।"

शङ्कर रावने विस्मित होकर कहा,—"पगली! कालू राय यहाँ कैसे आयेगा? मुझसे भी दिल्लगी!!"

तारा—"दिल्लगी नहीं, सच्ची बात ही कहती हूं। उस दिन गाड़ी लूटते समय जिस वेशमें वह आया था, आज भी उसी वेशमें यहाँ एकाएक आ पहुंचा था।"

शङ्कर—"किस समय?"

तारा—"सन्ध्याके समय।"

शङ्कर—"वह क्या भाग गया? उसे पुलिसके सुपुर्द क्यों न किया?"

तारा—"हमलोग उसे पकड़ न सके—वह भाग गया।"

शङ्कर,—"उस समय नरोत्तम राव कहाँ थे? तुम्हें सहायता देनेवाला क्या कोई न था?"

नरोत्तम रावने कहा,—"मैं घरमें न था। अभी आया हूं। ताराके मुँहसे उसके आनेका समाचार सुनकर बड़ी

चिन्ता हो गयी है। देखता हूँ, कि उसका साहस और अत्या-चार दिनो-दिन बढ़ता ही जाता है। अब किसीकी धन-सम्पत्तिकी रक्षा होना कठिन है। अब कोई भी शान्ति-पूर्वक अपना जीवन बितानेमें समर्थ न होगा।"

इसके बाद और भी कितनी ही बातें हुई। फिर नरोत्तम राव उठकर अपने सोनेवाले कमरेमें चले गये। तारा तथा शङ्कर राव उसी जगह बैठकर बातें करते रहे।

शङ्कर रावने पूछा,—"परन्तु तारा! तू क्या उस समय अकेली थी?

तारा,—"नहीं, धनेश्वर भी उस समय यहीं थे।"

शङ्कर,—"धनेश्वर! तब क्या वे भी उस डाकूको न पकड़ सके?"

तारा,—"उन्होंने पकड़नेकी चेष्टा की थी। परन्तु डाकूके हाथमें पिस्तौल देखकर वे आगे न बढ़ सके।

शङ्कर,—"भीरु! कापुरुष!! उनके सामनेसे ही कालू राय स्वच्छन्द चला गया और वे कुछ न कर सके?"

ताराका मुख मलिन हो गया। उसने दुःखित स्वरमें कुछ दृढ़तासे कहा—"वे अकेले क्या करते? यदि वे एक कदम भी आगे बढ़ते तो उसकी गोलीसे प्राण गँवाना पड़ता।"

शङ्कररावने व्यंग-भरे स्वरमें कहा,—"लोग उसे अग्रसर होते न सुनकर यह भी तो कह सकते हैं कि धनेश्वर कालूरायसे परिचित और उसके पाप-कर्म्मका सहचर है।"

ताराकी आंखोंमें जल भर आया। यह देखकर शंकर-रावने कुछ नम्र स्वरमें कहा:—"अच्छा, सब बातें हमें खुलासा बताओ।"

जो कुछ हुआ था—ताराने सभी कह सुनाया। परन्तु कालूरायने धनेश्वरपर जो दोषारोपण किये थे, उसे छिपा रखा। सब सुन लेने बाद शङ्कर रावने कहा—"मुझे मालूम होता है कि यदि धनेश्वरकी इच्छा रहती तो वह अवश्य ही किसी न किसी तरह उसे पकड़ लेते।"

इस बार तारा कुछ क्रोधित हो उठी। केवल क्रुद्ध ही न हुई कुछ अभिमान भी हो आया। वह बोली—"कालूराय पूर्णिमाके दिवस संध्याके समय तुम्हें बुला गया है, यदि सामर्थ्य हो तो उस दिवस उसे गिरफ्तार करना।"

शंकर मन-ही-मन हँसते हुए बोले—"कालूराय मुझसे भेंट न करेगा। मैं इस समय यही विचार रहा हूं, कि धनेश्वरने चिल्ला कर लोगोंको सहायताके लिये क्यों न बुलाया?"

तारा—"पर मैं तो चिल्लायी थी। चिल्लानेकी बात उन्हें स्मरण न आयी।"

शंकर—शायद साहस ही न हुआ।

बड़ा ही मर्म्मान्तिक श्लेष था। ताराने अब कोई बात छिपानी उचित न समझा। कालूरायने जो इशारा किया था, सवेरे केशवने जो कुछ कहा था—उसने सब कह दिया। सुन कर शंकरराव चिन्तित हो उठे। केशव और कालूरायने जो

कहा है, षट्चक्र दलवालोंने भी वे ही बातें कही हैं। तब क्या इन दलोंमें भी आपसमें कोई सम्बन्ध है ?

असम्भव नहीं है। धीरे धीरे उनके मनमें एक बात जड़ पकड़ने लगी। केशव उन्हें इस सन्देहसे छुड़ा सकता है। वह कालूराय तथा षट्चक्रके बहुतसे भेद अवश्य ही जानता है।

बहुत देर तक सोचने बाद एकाएक ताराकी ओर देखते हुए शंकर रावने कहा—"मदनजीके साथ तुमने कभी केशवको देखा है?"

तारा—"अकसर देखा है। क्यों वह भी क्या धनेश्वरका विपक्षी है ?"

शङ्करराम हँस पड़े। बहिनका चिन्ता-स्रोत ध्यान-धारणा सभी धनेश्वरकी ओर ही है। वे बोले,—"यह भी असम्भव नहीं है। कालूराय और केशव, दोनोंने ही धनेश्वर पर एक प्रकारका ही अपराध लगाया है। निश्चय ही उन दोनोमें जान-पहचान है। मदनजी और केशवमें भो घनिष्ठता है। मुझे मालूम होता, है कि मदनजी ही कालूराय है। मेरे विश्वासको यह घटना और भी दृढ़ बना रही है।"

रात अधिक हो गयी थी। शंकरराव दूसरे कमरेमें सोनेके लिये चले गये। तारा भी धनेश्वरके विषयमें सोचती हुई सो गयी।

आठवां परिच्छेद।

षट्चक्र
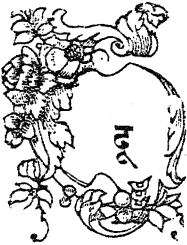
दूसरे दिन सवेरे शंकरारावकी केशवसे भेंट हुई। दोनोंमें विशेष सद्भाव न रहने पर भी बराबर बातें हुआ करती थीं। इस समय भी दोनो हँस हँसकर आपसमें बातें करने लगे; परन्तु गत रात्रिकी घटनाको स्मरण कर केशव मन ही मन कुछ लज्जित हो रहा था और डर भी रहा था। उसका यह संकुचित भाव देखकर शंकररावका सन्देह और भी बढ़ गया।

केशव ताराको प्यार करता था। शङ्कररराव ताराके भाई हैं। मदनकी और गोवर्द्धनकी बातोंमें आकर वह उनके दलमें जा मिला था। नहीं तो शङ्कररराव और केशवमें शत्रुता होनेका और कोई कारण न था। आज सवेरे घरपर आते ही शङ्कर रावपर ज्योंही उसकी दृष्टि पड़ी त्योंही वह भयभीत हो उठा। इसी लिये पहले तो उनसे बातें करनेमें वह हिचका परन्तु पीछे जब शङ्कर रावने हंस हंसकर उससे बातें करना आरम्भ किया सो उसका वह सन्देह दूर हो गया और वह भी उसी ढङ्गसे बातें करने लगा।

इधर यद्यपि शङ्कर राव यह न समझ सके, कि गत रात्रिके

आक्रमण करनेवालोंमें यह भी शामिल था परन्तु इतना विश्वास तो उन्हें अवश्य हो गया, कि षट्चक्रमें यह अवश्य सम्मिलित है। परन्तु अपने मनका यह भाव उन्होंने किसी तरह भी प्रकट न होने दिया।

समस्त दिवस इसी तरह बीत गया। संध्या हो गयी थी, वे दुर्गा भवनके दरवाजेपर खड़े हो, मनही मन कुछ सोच रहे थे कि एकाएक एक गाड़ी उनके सम्मुख आकर खड़ी हो गयी और उससे चार मनुष्य उतर पड़े। इनमें एक मनुष्य लक्ष्मीपति भी थे।

लक्ष्मीपतिको वहां देखकर शङ्कर रावको कोई आश्चर्य न हुआ। क्योंकि वे बराबर यहां आया करते थे। यहां आनेपर वे तारासे भेंट किये बिना न जाते थे; क्योंकि तारा उनके साझीदार की कन्या थी। अतः वे उसे अपनी कन्याके समान समझते थे।

उन्हें देखते ही शङ्कर राव लपककर उनके पास चले गये। परन्तु अन्य वार शङ्कर रावको देखकर वे जितने प्रसन्न हो उठते और प्रेमसे बातें करते थे,—इस वार वैसा न हुआ। उन्होंने दुःखित चित्तसे कहाः—"तुम यहां आये हो। अच्छा ही हुआ, मैं बड़ी विकट समस्यामें जा पड़ा हूं।"

शङ्कर रावने कहा,—"क्यों क्या फिर कालूरायने कोई उपद्रव मचाया?"

पहलेके समान स्वरमें ही लक्ष्मीपतिने कहा,—"यदि वैसा

होता तो कोई बुरी बात न थी । चलो, एकान्तमें सब बातें कहूंगा ।"

इतना कह, वे शङ्कर रावका हाथ पकड़े हुए, दुर्गा भवनमें चले गये । वहांके सभी मनुष्य उनसे विशेष परिचित थे । एक एकान्त कमरेमें बैठकर लक्ष्मीपतिने कहा,—"शङ्कर ! आज फिर मेरे पांच सौ रुपये चले गये । आज डाकुओंने फिर गाड़ीपर आक्रमण किया था ?"

शङ्कर—"क्या कालूराय आया था ?"

लक्ष्मी—नहीं इस बार मालूम होता है, पांच अन्य मनुष्य थे । पांचों उसी प्रकारके काले चोगेसे अपनेको छिपाये हुए थे । पहली बार कालूरायने मेरा यथासर्वस्व लूट लिया । इस बार बड़े परिश्रम और उद्योगसे जो कुछ एकत्र किया था वह इस तरह चला गया । हा ! क्या इनका अत्याचार बन्द न होगा ? क्या इतने कष्टसे उपार्ज्जन किया हुआ धन बराबर इन्हें ही दे देना पड़ेगा ?"

शङ्कर,—"शान्त होइये । इन डाकुओंको गिरफ्तार करनेकी चेष्टा तो मैं बराबर ही कर रहा हूं । क्या आपने भी कुछ पता लगाया है कि ये कौन थे ?"

लक्ष्मी—"मैं क्या खाक पता लगाऊंगा । इनका साहस बढ़ता ही जाता है, ये पाँच सौ देकर भी मेरा छुटकारा नहीं है ।"

शङ्कर—"क्यों ?"

लक्ष्मी—"उन्होंने कहा है, कि निश्चित दिवस एक निर्धारित स्थानपर उन्हें एक हजार रुपये और भी भेज देने पड़ेंगे। न देनेसे एक सप्ताहके भीतर ही वे मुझे मार डालेंगे।"

शङ्कर—"बड़ी भयंकर बात है। आप एक पैसा भी न भेजें।"

लक्ष्मी—मैंने भी यही निश्चय किया है और सच्ची बात तो यह है कि इतने रुपये मुझे कहाँसे मिलेंगे। परन्तु मेरा प्राण बचनेकी भी सम्भावना नहीं है।

शङ्कर—आपने क्या स्थिर किया है?

लक्ष्मी—"मैं निश्चित दिवस उस स्थानपर अवश्य ही जाऊँगा। परन्तु अपने साथ एक पैसा भी न ले जाऊंगा। मेरे साथी पास ही छिपे रहेंगे। डाकुओंका साहस बढ़ गया है। वे अवश्य ही वहाँ आयेंगे और इसबार मैं प्राण रहते उनको भाग न जाने दूँगा। आशा हैं, तुम भी मेरी सहायता करोगे।"

शंकर रावने बड़े उत्साहसे कहाः—"अवश्य करूँगा। उन्होंने क्या आपको अकेला ही बुलाया है।"

लक्ष्मी—"नहीं, इस सम्बन्धमें उन्होंने कुछ नहीं कहा है। परन्तु उनके सरदारने मेरे माथेसे पिस्तौलका निशाना साधकर कहा—खबरदार कोई चालाकी न खेलना।"

शंकर—"अच्छी बात है, देखा जायगा। आप निश्चिन्त रहें यह बात किसीके सामने प्रकट न करें। आपको कुछ करना न पड़ेगा। सब काम मैं ही करूँगा।"

इसके बाद नरोत्तमके मकानपर कालूरायके आनेके सम्बन्धकी सब बातें शङ्कर रावने लक्ष्मी-पतिसे कह दीं। सुनकर लक्ष्मीपतिने कहा—इनका साहस दिनों दिन बढ़ता ही जाता है। षट्चक्रका हाल भी तुम्हें मालूम हो ही गया। अद्भुत नाम है।"

शङ्कर रावने कहा—"हां उपद्रव दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है।"

एकाएक शंकरराव चुप हो गये और थोड़ी देर तक कुछ सोचने बाद बोले—"मदनजीसे आपकी कब भेंट हुई थी?"

लक्ष्मी—"चार पांच दिवस पहले।"

शङ्कर—"कहां।"

लक्ष्मी—"पूनामें, परन्तु उनसे विशेष बातें न हुई। क्योंकि उस दुर्घटनाके बाद उनसे हमारा विशेष सौहार्द नहीं रह गया है। भेंट होनेपर एक दो बात हो जाती है।"

शङ्कर—"क्या आपने शिवनिवास आनेकी बात उनसे कही थी।"

लक्ष्मी—"कही थी।"

शंकर—"रुपये पैसेके सम्बन्धमें भी कुछ बात हुई थी?"

लक्ष्मी—"नहीं, इतनाही मैंने कहा था, कि सुना है, कि शिवनिवासमें एक रेशमकी कोठी नीलाम होगी, उसीका पता लगाने जाऊंगा।"

शंकर—"तभी आपके रुपये चले गये। अबतक तो मेरी यह धारणा था, कि मदनजी ही कालूराय है। परन्तु अब यह भी मालूम हो गया, कि षट्चक्र दलका भी वही सरदार है।"

लक्ष्मी पति मन-ही मन कांप उठे। भयभीत स्वरसे बोले,—"यह तुम्हारा अनुमान मात्र है। तुम्हारी पहलेसे ही धरणा है, कि यही मनुष्य कालूराय है। परन्तु आज छः वर्षोंमें यह बात तुम प्रमाणित न कर सके। तुम्हारा यह अनुमान मिथ्या भी हो सकता है। मेरी यह इच्छा नहीं है कि कोई मनुष्य केवल सन्देहके कारण दण्डित हो जाय।"

शंकर—"मेरी भी कदापि ऐसी इच्छा नहीं है। केवल सन्देहपर निर्भर कर मैं उसे गिरफतार न करूंगा। जबतक मुझे पूरा पूरा प्रमाण न मिल जायगा, तबतक मैं उसे स्पर्श भी न करूँगा।"

इसके बाद दोनों उठ खड़े हुए। लक्ष्मीपति तारासे भेंट करने चले गये और शंकरराव दूसरी ही ओर रवाना हो गये।

चन्द्रकला और शंकर।

सूर्यदेवको अस्ताचल सिधारे बहुत देर हो गयी है। आकाशमें तारे निकल आये हैं और उनकी क्षीण प्रभा गांवके खेतोंपर पड़कर एक अपूर्व दृश्य दिखा रही है। चारों ओरसे अन्धकार बढ़ता हो आता है। इसी समय इधर उधर घूमते हुए शंकरराव एक गांवके पास आ पहुंचे। गांवके पास ही पर्व्वत श्रेणी है। एक पहाड़ीके नीचे एक कुटी बनी हुई है।

यह उसी गोबर्द्धनकी कुटी है। सन्ध्याके समय आकाशमें खिले हुए तारोंके समान ही इस कुटीमें भी एक तारा है। यह तारा कोई दूसरा नहीं, गोबर्द्धनकी कन्या चन्द्रकला है। शंकर रावने जबसे उसे देखा तबसे भूल न सके। उसके सुषमापूर्ण हृदयकी बातें और उसका उदार चरित्र क्षण भरके लिये भी उनकी स्मृतिकी ओटमें न जा सका। उन्होंने सवेरा होते ही चन्द्रकलाका पता लगाना आरम्भ किया और उसके सम्बन्धमें बहुत कुछ जान भी गये। उन्हें अच्छी तरह मालूम हो

गया, कि गोबर्द्धन डाकू है। हत्या प्रभृति भीषण पापों द्वारा धन उपार्जन करना ही उसका नित्यका काम है। इसी दुराचारी पापी दस्युकी चन्द्रकला कन्या है। मानो पत्थरमें कमल खिला है—नरकमें देवी प्रतिमाका आविर्भाव हुआ है।

यह समाचार जानकर शंकररावके हृदयमें बड़ी चोट पहुँची। उस दिनका गोवर्द्धनका व्यवहार देखकर वे बड़े ही चमकित हुए। ऐसे पिताकी ऐसी कन्या! यह कैसे हुआ? प्रकृतिका यह कैसा खेलवाड़ है!

सामनेही गोवर्द्धनकी कुटी थी। कुटीमें दीपक जल रहा था। यह देखकर शंकरराव एकबार चन्द्रकलासे मिलनेका लोभ रोक न सके। वे कुटीके पास जाकर सतर्क दृष्टिसे भीतरकी ओर देखने लगे, परन्तु किसी प्रकारकी विपत्तिकी सम्भावना न दिखायी दी। चारों ओर सन्नाटा छाया था। कुटीके भीतर या बाहर कहीं भी किसीका शब्द न सुन पड़ता था। अब उन्होंने द्वारमें धक्का दिया, तुरन्त ही दरवाजा खुल गया और चन्द्रकला सामने आ खड़ी हुई। शंकरको देखते ही उसकी बड़ी बड़ी कमलकी पंखड़ियों सी आंखें हृदयकी प्रसन्नतासे चमक उठीं; परन्तु यह आनन्द-ज्योति क्षणिक थी। वर्षाके जलभरे काले मेघोंके बीच जिस तरह बीच बीचमें सौदामिनी झलक मारकर फिर छिप जाती है, चन्द्रकलाके चेहरेकी वह आनन्द भरी चमकीली प्रभा भी उसी तरह एक वार झलक दिखाकर फिर पूर्ववत निष्प्रभ हो

गयी। अभागिनी कटी हुई हरिनीके समान आंसूभरी आंखोंसे जमीनकी ओर देखती खड़ी रह गयी।

उसे इस अवस्थामें देखकर शंकररावने पूछा—" चन्द्रकला कैसी हो ?"

चन्त्रकला—अच्छी हूं।

शंकर—तुम्हारे पिता कहां हैं ?

चन्द्रकला—कहीं गये हैं।

शंकर—मैं अतिथि रूपसे तुम्हारे दरवाजेपर आया हूं, भीतर क्यों नहीं बुलाती हो ?

चन्द्रकलाका मलिन मुख और भी मलिन हो गया। उसने कम्पितकण्ठसे कहा—"कल रातकी घटना मुझे अच्छी तरह स्मरण है। इसीलिये आपको भीतर बुलानेका साहस नहीं होता। आप यहां क्यों आये हैं ? यह विष भरा शापित स्थान त्यागकर अभी चले जायें।"

चन्द्रकलाकी आवाज विषादभरी थी। उसकी प्रत्येक बात-से उसके हृदयकी दारुण यंत्रणा टपकी पड़ती थी। यह देखकर शंकररावने कहा—"रातकी घटना तुम्हारे लिये नवीन होनेपर भी मेरे लिये नयी नहीं थी—मैं उससे दुःखित भी नहीं हूँ। यदि मेरे आनेसे तुम्हारी कोई हानि न हो, तुम्हें किसी प्रकारका दुर्व्य-वहार न सहन करना पड़े तो मैं भीतर आकर तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूं।"

उस समय चन्द्रकला मानो उन्मत्त हो रही थी। उसे स्वयं

ही ध्यान न था कि वह क्या कर रही है। वह बिना विचारे दो चार पग पीछे हट गयी। शंकरराव कुटीमें जाकर दरवाजा बन्द कर चौकीपर बैठ गये।

इसके बाद शंकररावने कहा:—"मेरे इस तरह यहां आनेसे तुमपर कोई विपत्ति तो न आयेगी ?"

चन्द्रकला बड़े ही मधुर स्वरमें बोली:—"मुझे अपनी चिन्ता नहीं है, परन्तु यदि पिता आ गये तो आपका जीवन बचना कठिन हो जायगा। कल जिस तरह चले गये थे, आज उसी तरह न जा सकेंगे।"

शंकररावने मुस्कुराते हुए कहा—'मेरे लिये तो तुम कुछ चिन्ता ही न करो। मुझे विपत्तिका सामना करनेका खूब अभ्यास हो गया है। जिस उद्देश्यसे मैं यहां आया हूं वह पूरा किये बिना न जाऊँगा। कल तुमने मेरा जो उपकार किया है, उसे मैं भूल नहीं सकता। चन्द्रकला ! मैं समझता हूं, कि तुम बड़े कष्टसे अपने दिन काट रही हो, तुम्हारा जीवन बड़ा ही कष्टमय है। मैं यही सोचता हूं, कि तुम्हें कैसे इस दुःखसे छुड़ाऊँ। यदि तुम कोई उपाय बता सको तो बताओ, मैं अपना प्राण देकर भी तुम्हारा उपकार करूँगा।"

चन्द्रकला बोली—"यह आपकी समझकी भूल है। यह आपसे किसने कहा कि मैं यहां कष्टमें पड़ी हूं। क्या भवितव्यके हाथोंसे कोई छुटकारा पा सकता है ? मेरे भाग्यमें यही बदा है।

शंकर—यह बड़ा भ्रमपूर्ण विश्वास है। तुम क्या इस अवस्था से छूटना नहीं चाहतीं ?"

एक विषाद भरी हँसी चन्द्रकलाके चेहरेपर छा गयी। वह बोली—"आप सदाशय हैं। आपका हृदय बड़ा ही महत है। मैं अच्छी तरह समझती हूं, कि मेरे भलेके लिये ही आप ये बात कह रहे हैं। परन्तु अदृष्टसे झगड़नेका सामर्थ्य किसमें है? मैं अदृष्टसे झगड़ना नहीं चाहती। कोई भी कभी अदृष्टपर विजय नहीं प्राप्त कर सका है।

शङ्कर—कल रातकी घटनाओंने तुम्हारे पिता और तुम्हारे स्वभावका आकाश पातालका अन्तर तथा तुम्हारी प्रकृत अवस्था मुझे अच्छी तरह बता दी है। दानवपुरीमें रहनेपर भी तुम देव कन्या हो। तुम्हारी प्रकृति देवियोंसी है, परन्तु न जाने क्यों तुम्हारे पिता पैशाचिक प्रकृतिके बन गये हैं। तुम उनकी औरस जात कन्या नहीं मालूम होती। तुम दस्युदुहिता रहनेपर भी दया-वती हो, पिशाचके साथ रहनेपर भी करुणामयी देवी हो। अब भी तुम्हारी प्रकृति कोमल और दया भरी है। परन्तु चन्द्रकले! दुर्नीतिकी आगके तापके सामने तुम्हारी यह प्रकृति कितने दिन स्थिर रह सकेगी? पिशाचकी संगतिमें रहकर तुम कबतक अपने हृदयको इसी तरह निर्मल रख सकोगी? अधिक दिवस नहीं। मनुष्य रख भी नहीं सकता। संगतिका फल अवश्य ही होता है। आज तुम दूसरोंको दुःखी देखकर स्वयं भी रोने लगती हो, परन्तु संगतिके फलसे कुछ ही दिन बाद तुम्हारे स्वभावमें

ऐसा परिवर्तन होगा कि तुम दूसरोंका अनिष्ठ देखकर आनन्दित होने लगोगी। मनुष्य जिस संगतिमें रहता है उसका गुण दोष उस पर अवश्य ही अपना प्रभाव जमाता है। इसी लिये कहता हूं कि समय रहते सावधान हो जावो। वालूकी दीवार पर खड़ी न रहो, अब भी समय है—अपनी रक्षा करो।"

चन्द्रकला चुप हो रही। कुटीकी दीवारके सहारे मुँह झुकाये ज्योंकी त्यों काठकी मूर्त्तिकी भांति खड़ी रही। शङ्कररावने फिर कहाः--"कल रातमें तुमने मेरा जीवन बचाया था, आज मैं तुम्हारी रक्षा करने—तुम्हारी अविनश्वर आत्माको पाप-पथसे दूर रखने के लिये यहाँ आया हूं। बोलो क्या कहती हो?

चन्द्रकला इस बार बोली--"आप क्षमा करें। मुझे अपने अदृष्टका फल भोगने दें।"

शंकर रावने फिर कहा—"चन्द्रकला! तुम बुद्धिमती हो। जानबूझकर क्यों आगमें कूदती हो, क्यों मेरे सुपरामर्शको नहीं सुनतीं? क्या इसमें और भी कोई रहस्य छिपा है?"

चन्द्रकला—कुछ नहीं; मैं जो जानती हूं वह सब आपको बताती हूं। मैं गोवर्द्धनरावकी कन्या हूं। पिताके सिवा मेरा कोई दूसरा आत्मीय नहीं है। मैं उन्ह छोड़कर कहीं न जाऊँगी—जी न सकूँगी। हमारे रक्त सम्बन्धके सिवा एक और भी बड़ा सम्बन्ध महापातक है।

शङ्कर—तुमने क्या कोई महापातक किया है?"

चन्द्रकला—नहीं?

शंकर—जो पातकी है, उसका संसर्ग त्यागकर—

वाधा देकर कुछ गर्वित भावसे चन्द्रकलाने कहा—"वृथाकी बातोंसे कोई लाभ नहीं। ये बातें सुनना भी मैं नहीं चाहती; सुननेसे कष्ट होता है, आप जाइये पिताके आनेका समय हो गया है।

शंकररावके मनमें बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने कहा—"चन्द्रकला! क्या मैं कभी कभी तुमसे मिल भी न सकूँगा?"

चन्द्रकलाने विषादभरी दृष्टिसे उनको ओर देखते हुए कहा—"नहीं! न मिलना ही अच्छा है। मैं समझ गयी हूं, कि आपका हृदय महान् उदार एवं सदाशय है; परन्तु मुझे भूल जाइये। आज से हमलोग फिर अपरिचित हो गये। यदि आप मुझपर दया न दिखाकर मुझसे घृणा करते तो मैं अत्यन्त प्रसन्न होती। जाइये यहां क्षणभर भी न ठहरिये।

इतना कह चन्द्रकला कुटीके बाहर चली आयी। लाचार शंकर रावको भी दुःखित चित्तसे वहांसे प्रस्थान करना पड़ा।

———

दसवां परिच्छेद ।

कालूरायका साथी ।
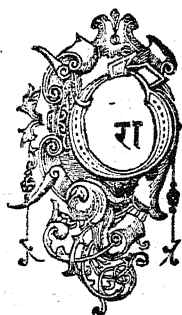
त पहरभरसे अधिक ही हो चुकी है। शिव-निवासमें सन्नाटा छा रहा है। गांवमें घुसतेही थोड़ी दूरपर ईंटका भट्टा और दूसरी ओर एक वृक्ष है। इसी राहपर खड़ा होकर एक मनुष्य लोलुप दृष्टिसे गांवकी ओर देख रहा है।

एकाएक उसके पीछे एक शब्द हुआ। ध्यानसे सुननेपर उसे मालूम हुआ, कि कोई आ रहा है। वह वृक्षकी ओटमें छिपकर खड़ा हो गया।

ज्यों ही वह पथिक वृक्षके पास आया त्यों ही वह मनुष्य उस वृक्षकी ओटसे निकलकर उसपर झपट पड़ा और उसके माथेके पास पिस्तोल लेजाकर बोला—"चुपचाप खड़े रहो, नहीं अभी मारे जावगे।"

पथिक खड़ा हो गया। शान्त भावसे बोला—"क्या चाहिये?"

डाकू—तुम्हारे पास जितने रूपये हों, अभी देदो।

पथिक—इतना ही, पहले क्यों नहीं कहा। यह लो।

डाकू—शीघ्र दो।

पथिक अपने वस्त्रकी जेबमें हाथ डालकर रूपये निकालने लगा। डाकू उसी ओर देखने लगा। डाकूकी दृष्टि निशानेकी ओरसे हटते ही पथिकने बड़ी तेजीसे दूसरे हाथसे उसका गला धर दबाया और जमीनसे दो तीन इँच ऊपर उठाकर उस डाकूको उसने जमीनपर पटक दिया।

डाकूको गहरी चोट आयी। वह किसी तरह बदन झाड़कर उठना ही चाहता था, कि उसे नाकके पास कोई ठण्डी चीज स्पर्श करती हुई मालूम हुई। दस्यु भयसे कांप उठा। उसने देखा, कि यह तो पिस्तौल है। गिरते समय उसके हाथकी पिस्तौल कहीं छूट पड़ी थी। अब शत्रुके हाथमें सांघातिक शस्त्र देखकर, वह बड़ा ही भय विह्वल हो गया।

इसी समय पथिकने वैसे ही शान्त भावसे कहा—"अब तुम शान्त भावसे उठ बैठो, नहीं तो, यदि किसी तरह पिस्तौलकी गोली निकल पड़ी तो तुम्हारा फिर कहीं ठिकाना भी न रहेगा।

अब दस्यु उस पथिककी बात टाल न सका। उसने काँपते हुए स्वरमें कहा—"मुझे क्षमा करो, मैंने विना सोचे समझे तुम-पर आक्रमण किया था।"

पथिक—तब तुम डाकू हो?

दस्यु—नहीं अब नहीं...

पथिक—क्यों डकैती करनेकी इच्छा पूरी हो गयी?

अबतक उस डाकूने पथिकके चेहरेपर ध्यान न दिया था। अब एकाएक उसके चेहरेपर दृष्टि पड़ते ही बोल उठा—"तुम

अपना चेहरा क्यों छिपाये हो? इस तरह गला दबाकर बातें क्यों करते हो? तुम भी क्या कोई डाकू ही हो।

पथिक—मैं सदाही अपना चेहरा इसी तरह छिपाये रहता हूँ। क्यों, क्या तुम मुझे पहचानते हो?"

दस्यु—नहीं।

पथिक—मेरा नाम कालूराय है।

उस डाकूने आश्चर्य्यसे कहा—"ईश्वर मेरी रक्षा करे। मैं तुम्हे नहीं पहचानता था।"

पथिक या कालूरायने हँसकर कहा—"तुम बड़े बहादुर हो। जिसके भयसे समस्त देश काँप रहा है, तुम उसपर ही वार करने चले थे। तुम्हारा नाम क्या है?

दस्यु—मेरा नाम सोमेश्वर है। मैं आपका दास हूँ।

कालू—तुम षट्चक्र दलके एक मनुष्य हो?

सोमेश्वर चौंक उठा, बोला—"इसका क्या मतलब?

कालू—यदि तुम नहीं जानते तो मैं बताना भी नहीं चाहता, परन्तु यदि उस दलमें सम्मिलित हो तो उसके मनुष्योंको मेरा सामना करनेके लिये मना कर देना। एक बात और भी है मेरे शरीरपर हाथ लगाकर तुम निर्विघ्न नहीं जा सकते।"

इतना सुननेही सोमेश्वर उसके पैरोंपर लोट पड़ा। कालूरायने कहा—"कुछ न कुछ तो प्रतिफल भोगना ही पड़ेगा। यह गोली ......

सोमेश्वर गिड़गिड़ाने लगा। बोला—"तुम डाकुओंके राजा

हो, मुझ गरीबोंको मारकर तुम्हारा क्या लाभ होगा? इस बार मुझे क्षमा करो, अब मैं कभी तुम्हारी आज्ञा उल्लंघन न करूँगा।"

कालू—अच्छा, इस बार तुम्हें क्षमा किया। परन्तु मेरे कथनानुसार तुम्हें काम करना पड़ेगा।

सोमेश्वर—इसके लिये मैं तय्यार हूँ।

कालू—मेरे जैसा वस्त्र पहनकर दुर्गा-भवनमें जाकर कहो —मैं कालूराय हूं।

सोमेश्वर भयसे कांप उठा। जोरसे ठण्डी सांस लेकर बोला—"यदि पकड़ा जाऊँ?"

कालू—बस, इतना कहकर ही तुम भाग आना।

सोमेश्वर—लेकिन यदि पकड़ा गया?

कालू—तो मरना, और यदि जानेकी इच्छा न हो तो यहीं मरो। पहलेमें भाग जानेकी सम्भावना है—परन्तु दूसरेमें—मेरा निशाना अचूक है। यदि विश्वास न होता हो तो एकबार परीक्षा कर लो।

सोमेश्वर—वैसी पोशाक कहाँ मिलेगी?

कालूरायने अपने वस्त्रोंमेंसे अपने जैसा ही एक वस्त्र निकाल कर उसे दे दिया। सोमेश्वर अपनी जान बचानेके लिये ईश्वरको धन्यवाद देता हुआ, दुर्गा-भवनकी ओर चला गया।

रात पहर भरके लगभग बीत चुकी थी। दुर्गा-भवनके रहनेवाले भोजनादिसे निश्चिन्त हो, एक कमरेमें बैठकर नाना

प्रकारकी बातें कर रहे थे, इसी समय एकाएक एक मनुष्यने वहाँ जाकर कहा—"यदि कालूरायको देखकर अपना जीवन सार्थक किया चाहते हों तो देख लें।"

सबकी दृष्टि उसी ओर फिर गयी। सबने आश्चर्य्य विजड़ित स्वरमें कहा—"कालूराय!"

कुछ क्षणतक सभी स्तम्भित भावसे बैठे रहे। कुछ देर बाद जब उनका विस्मय-वेग घटा, जब उनमें कार्यकरी शक्ति लौटी, तब उनमेंसे एक बलवान युवक तेज़ीसे कालूरायकी ओर झपटा। उसके झपटते ही अन्य सभी मनुष्य कालूरायकी ओर झपट पड़े। पहला आक्रमणकारी युवक शङ्कर राव था।

नकली कालूराय वहाँसे भागा। क्षणभर बाद ही दुर्गा-भवनके बहुतसे मनुष्य सड़कपर दिखायी देने लगे। असली कालूराय अबतक छिपा हुआ था, वह अवसर देखकर दुर्गा-भवनमें घुस पड़ा। इस समय रत्नेश्वर नामका दुर्गा-भवनका एक कर्म्मचारी किसी आवश्यक कामसे ऊपर जा रहा था कालू-राय उसकी राह रोककर खड़ा हो गया। रत्नेश्वरने विस्फारित नेत्रोंसे देखा—"कालूराय।"

कालूरायने पिस्तौल निकालकर निशाना साधते हुए कहा—"खड़े रहो।"

रत्नेश्वर—"तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे।"

कालू—तुम क्या मुझे पहचानते हो?

रत्नेश्वर—खूब पहचानता हूं। उसदिन सन्ध्याके समय

तुमने जो प्रहार किया था, उसकी व्यथा अबतक दूर नहीं हुई है। नहीं तो, सब तुम्हें पकड़ने गये, मैं न जाता।

कालू—तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण है। देखो, अन्य मनुष्य जिसे पकड़ने गये हैं, उसे मैंने ही सजा बजाकर भेजा था, वह असली कालूराय नहीं है। यदि वह पकड़ जाये, तब भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। तुम भी सबसे कह देना, कि वह अपराधी नहीं, नकली कालूराय हैं। असली कालूराय मैं हूं। अब तुम जा सकते हो। परन्तु कोई चतुरायी न खेलना।"

रत्नेश्वर ऊपर चला गया। कालूराय चुपचाप वहाँसे चला आया।

लगभग पन्द्रह मिनिट बाद नकली कालूरायका पोछा करने-वाले एक एककर लौटने लगे। जब उन लोगोंने रत्नेश्वरकी बातें सुनीं तो सभी अपने अपने कमरेमें जाकर अपनी चीज वस्तु देखने लगे। देखनेपर मालूम हुआ, कि बहुतोंकी बहुत सी मूल्यवान सामग्री गायब हो गयी है। एक कमरेमें इससे भी एक गुरुतर घटना दिखायी दी। लक्ष्मीपति एक कमरेमें बेहोश पड़े हुए थे। उनकी अचेतन देह और वस्त्र खूनसे भरे थे। माथेसे अब भी रक्त बह रहा था।

समाचार पाते ही शङ्करराव उस कमरेमें जाकर उन्हें होशमें लानेकी चेष्टा करने लगे। होशमें आनेपर लक्ष्मी-पतिने देखा कि शङ्करराव उनके सिर्हाने बैठकर उनकी परिचर्य्या कर रहे हैं। उनको होशमें आते देखकर शङ्कररावने पूछा—"क्या हुआ है?"

मालूम होता है, कालूराय आया था ओर वही आपपर इस तरह प्रहारकर चला गया है।"

लक्ष्मी—"कालूराय !"

शङ्कर०—'क्यों, क्या आपने उसे नहीं देखा ?"

लक्ष्मी पति उठ बैठे। कुछ देर बाद बोले—"वास्तवमें मैं कुछ नहीं जानता। मैं दरवाजेकी ओर पीठकर यहां बैठा हुआ था। इसी समय पीछेसे किसीका पद शब्द सुन पड़ा मैंने समझा कि तुम आ रहे हो। यही सोचकर ज्यों ही मैंने मुँह फेरकर देखा त्यों ही किसीने बड़े जोरसे मेरे माथे पर आघात किया। इसके बाद क्या हुआ, कुछ मालूम नहीं। तब क्या सचमुच ही कालूराय यहां आया था ?"

शङ्कर—"अवश्य, उठ कर देखिये, कुछ ले तो नहीं गया !"

लक्ष्मी,—"नहीं सो डर नहीं है। मेरे पास रक्खा क्या है, जो ले जायगा। परन्तु तुम क्या कह रहे हो,—कालूराय यहाँ आया था। बात बिल्कुल असम्भव मालूम होती है।"

इसके बाद शङ्कररावने समस्त घटनायें कह सुनायीं। सुनकर लक्ष्मी-पतिने कहा—"बड़े अचरजकी बात है। उसमें कितना साहस भरा है। पुलिसका इतना प्रवन्ध रहनेपर भी वह गांवमें आकर मन माना कामकर चला गया। ये बड़े बड़े कीर्त्ति प्राप्त पुलिसके जासूस क्या कर रहे हैं ?"

कहते कहते वे यह सोचकर चुप रह गये कि शायद शङ्कर-रावको उनकी बातें बुरी लगें।

शङ्कर रावने इस बातका कोई उत्तर न दिया । लक्ष्मीपति-को सावधानकर वे नीचे उतर आये । नीचे आते ही धनेश्वरसे उनकी भेंट हुई । धनेश्वरको देखकर उन्होंने पूछा—"तुम अब तक कहाँ थे ?"

धनेश्वर इस प्रश्नसे कुछ स्तम्भित हो गया । मानो वह कुछ छिपानेकी चेष्टा करने लगा । बोला—"एक कामसे बाहर गया था ।"

शङ्कर—"तब तुमने कालूरायको नहीं देखा ।"

धनेश्वर—"नहीं ।"

इसी समय वहाँके एक नौकरने कहा—"डाकूके चले जाने बाद वह यहां आये हैं ।"

धनेश्वर—मानो और भी सङ्कुचित हो गया । शङ्करराव कुछ समझ न सके कि वह क्यों इस तरह सङ्कुचित हो रहा है । उन्होंने पूछा—"तुम किधर गये थे ?"

धनेश्वर—"पूर्वकी ओर ।"

शङ्कर—"राहमें किसीसे भेंट हुई थी ।"

धनेश्वर—"नहीं, मुझसे इतने प्रश्न क्यों कर रहे हैं ?"

शङ्कर—"यों ही पूछता हूं ।"

इसके बाद दोनों दो तरफ चले गये । आजसे धनेश्वरपर भी शङ्कररावको घोर संशय हो गया । उनके मनमें यह धारणा बैठ गयी कि धनेश्वर और कालूरायमें अवश्य ही कुछ सम्बन्ध है और उसी मुहूर्तसे धनेश्वरपर उनकी तीक्ष्ण दृष्टि स्थापित हुई ।

ग्यारहवां परिच्छेद ।

धनेश्वरपर आफत ।

त आधी बीत चुकी है। दुर्गाभवनका दरवाजा बन्द हो चुका है। सभी अपने अपने कमरेमें सो रहे हैं—केवल धनेश्वर की आंखोंमें नींद नहीं है। एकाएक उसने बिछावनसे उठकर अपना बक्स खोला और उससे एक पदार्थ निकालकर उसे अच्छी तरह देखने लगा।

जो पदार्थ निकाला था, वह एक चोगा था। कालूराय जैसे वस्त्रसे अपना समूचा शरीर ढके रखता था : यह भी वैसा ही था। उसे कागजमें लपेटकर धनेश्वरने कहा—चलो, आज तुम्हें भी विसर्ज्जन कर दूँ। अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं है। शङ्कररावने मुझे भी सन्देह-दृष्टिसे देखना आरम्भ किया है। यदि तुम मेरे पास दिखायी दिये, तो मेरे जीवनकी आशा-लता यहीं मुरझा जायगी। फिर ताराको न प्राप्त कर सकूँगा।"

इतना कहकर धनेश्वरने अपने कमरेका दीपक बुझा दिया और धीरे धीरे दरवाजा खोल, दुर्गा-भवनके बाहर निकल गया

और तेजीसे पहाड़ीकी ओर रवाना हुआ। एक बार भी उसने मुँह फेरकर पीछेकी ओर न देखा। यदि देखता तो मालूम हो जाता, कि अन्धकारमें एक मनुष्य उसका पीछा कर रहा है।

धनेश्वरने पहाड़ीके पास जाकर एक पहाड़ी दर्रेमें वह कागज में बँधा पदार्थ फेंक दिया।

इतना कर, वह तेजीसे वहांसे लौट आया। इसके कुछ क्षण बाद ही वह पीछा करनेवाला वहाँ जा पहुंचा। उसने सावधानतासे वह पदार्थ बाहर निकाल लिया और उसके ऊपर बँधा हुआ कागज खोल डाला। उसके पास छोटी बिजलीकी लालटेन थी, उसकी रोशनीमें उसने जो देखा उससे उसके विस्मयका वारापार न रहा। उसने अस्फुट स्वरमें कहा—"कालूरायका यह वस्त्र तो एक ट्रेड मार्क हो गया है। इस ओर के जितने चोर बदमाश हैं, सभी इसका व्यवहार कर रहे हैं। अब तो असली और नकलीको पकड़ना बड़ा ही कठिन है। यह वस्त्र जो रख गया है वह असली है या नकली? संध्याके समय कालूराय दुर्गा-भवनमें गया था और आधीरातके समय धनेश्वर इसे यहां रख गया। धनेश्वरका आचरण तो क्रमशः रहस्यपूर्ण हुआ जाता है; अब उसपर और भी सतर्क दृष्टि रखनी पड़ेगी!"

कहना वृथा है कि वह शंकरराव जासूस थे।

शंकरने उस वस्त्रको जहांका तहां, उसी तरह कागजमें रख-कर प्रस्थान किया।

इधर धनेश्वर अपनी विपत्तावस्थाको सोचता हुआ लौट

पड़ा । परन्तु मनमें स्थिरता न रहनेके कारण राह भूल गया । अँधेरी रातमें सामने ही ऐक ओरसे आती हुई आलोककी क्षीण प्रभा देखकर उसका ध्यान भंग हो गया । अब अच्छी तरह देखने पर वह समझ गया कि राह भूलकर वह गोवर्द्धनकी कुटीके पास आ पहुंचा है और यह रोशनी उसकी कुटीसे आ रही है ।

इतनी रातमें गोवर्द्धनकी कुटीमें दीपक क्यों जल रहा है ? सभी जानते थे कि गोवर्द्धन दुश्चरित्र है—धनेश्वरसे भी यह बात छिपी न थी । तब क्या वह दीपक जलाकर किसी पापकार्यकी आलोचना कर रहा है ? असम्भव नहीं है । मनुष्यका मन सदा कौतूहलपरवश रहता है । धनेश्वरकी मानसिक अवस्था उस समय अच्छी न रहने पर भी उसके हृदयमें कौतूहल उत्पन्न हो गया । वह दबेपाँव कुटीके दरवाजे पर आ पहुँचा । अब उसने झांककर कुटीके भीतरकी अवस्था देखी और क्षीण प्रभा दीप राशिके सहारे उसे जो दिखायी दिया, उससे उसके आश्चर्य्यका वारापार न रहा ।

उसने देखा कि चौकीपर बैठकर दो मनुष्य जुआ खेल रहे हैं । उनमें एक गोवर्द्धन है और दूसरा उसका प्रतिद्वन्द्वी, तारा का पाणिप्रार्थी केशव है । केशव एक प्रतिष्ठित मनुष्यका पुत्र था । अतः उसे गोवर्द्धनकी कुटीमें देखकर धनेश्वरको और भी आश्चर्य्य हुआ । इस समय यह स्मरण कर धनेश्वरको हँसी आ गयी, कि इसी दुराचारीने एक दिवस उसपर वृथा ही दोषारोपण किया था ।

जूआ जोरोंमें हो रहा था। परन्तु बराबर ही केशव हारता था। जब उसकी सब रकम चली गयी तो उसने घबड़ाकर कहा—"बस आज इतना ही। अब आज न खेलूँगा। गोवर्द्धन! आज तुम्हाराही पौबारह है।

गोवर्द्धनने हँसकर कहा—"नहीं कब है। तुमने कब जीता है?

केशव—"हमलोग यहाँ आकर हार जाते हैं, इसीसे तुम जीवित हो, नहीं तो कभीके मर गये होते।',

गोवर्द्धन,—"क्यों मेरे पास क्या और रुपये नहीं हैं।"

केशव—लोगोंसे सुनता हूँ, परन्तु मुझे विश्वास नहीं है।

गोवर्द्धन—मुझे पहाड़में गुप्त धन मिला है। जब जरूरत पड़ती है, तभी निकाल लाता हूँ।"

केशव—यह धन तुम्हें कब मिला?

गोवर्द्धन—आज छः वर्ष हुए।

केशव—अर्थात जिस समय लक्ष्मीपतिका खजाना लूटा गया।

गोवर्द्धन बिगड़ उठा केशवने उसपर ध्यान न देकर फिर कहा—"बिगड़ो मत। वह धन तुम्हें उसी समय मिला जब पूनाके कोठीवालोंका दीवाला निकल गया।"

गोवर्द्धन—तुम क्या कह रहे हो। इन बातोंका मतलब क्या है?"

केशव—मैं तो स्पष्ट ही कह रहा हूँ कि सम्बत् १९६८ ज्येष्ठ मासको पंचमीको कालूरायने पचास हजार रूपये लूट लिये और तुम भी कह रहे हो, कि उसी समय तुम्हें गुप्त धन मिला। अब तो बातका मतलब समझ गये।

गोवर्द्धन—अर्थात मैं ही कालूराय हूँ ? क्यों ?"

केशव हँसने लगा। गोवर्द्धनकी आँखें लाल हो गयीं। उसके भीषण मुखमण्डलने और भी भीषणतर भाव धारण किया। धनेश्वर वह भीषण पैशाचिक भाव देखकर काँप उठा।

इसी समय गोवर्द्धनने कहा—"सावधान केशव ! जो कहा है। वह बात फिर मुँहसे न निकले। कालूरायको पड़नेके लिये पुलिस कितनी चेष्टा कर रही है, क्या तुम नहीं जानते। मुझे क्या तुम फाँसी चढ़वाना चाहते हो ?

हँसते हुए केशवने कहा—"पागल नहीं हूँ। यह बात बाहर न फूटने पायेगी।"

गोवर्द्धन—यदि फूट गयी तो फिर मैं तुम्हारी जान भी न छोड़ूँगा। "कालूरायसे मेरा क्या सम्बन्ध है ? उसे कौन पहचानता है ?"

केशव—क्यों तुमने ही तो उस दिवस कहा था कि यदि मैं जासूस रहता तो धनपति राव और लक्ष्मीपति रावके पचास हजार रुपयोंका तुरन्त पता लगा देता।"

गोवर्द्धनने दाँत पीसते हुए कहा—"फिर वे ही बातें। तुम क्या मुझे फाँसी दिलाये बिना शान्त न होगे ?"

केशव—देखो गोवर्द्धन ! तुमसे एक बात कहता हूँ। मेरी इस समय बुरी दशा है। हाथमें रुपये अब बिल्कुल नहीं रहे। तुम मुझसे अब एक शर्त्तनामा कर लो। मुझे भी कुछ अंश दो। मैं तुम्हारी गुप्त बात किसीसे न कहूँगा।"

गोवर्द्धनने तुरन्तही एक छुरा निकाल, गरजकर कहा—और यदि यही तुम्हारी छातीमें घुसेड़ दूँ, तो कितना उत्तम शर्त्तनामा हो जाये—सब झमेला यहीं तय हो जायगा।

गोवर्द्धनने भयंकर आकार धारण किया। वह विकट मूर्त्ति देखकर धनेश्वर भय-प्रकम्पित हो उठा। यदि भय, विस्मयसे उसका वाक्य रोध न हो जाता तो वह चिल्ला उठता।

केशव पहलेसे ही सावधान था। नहीं तो गोवर्द्धनका छुरा अवश्यही उसका प्राण हरण करता। उसके पासही बाँसकी लाठी रखी थी। वह वही डण्डा लेकर उठ खड़ा हुआ और कर्कश स्वरमें बोला—"सावधान गोवर्द्धन! ऐसा न समझना कि तुम्हारे हाथमें छुरा देखकर मैं भयसे प्राण त्याग दूँगा।"

गोवर्द्धनभी क्रुद्ध साँढ़की तरह गर्दन टेढ़ीकर खड़ा हो गया। कौन जानता था कि इस घटनाका प्रवाह कहाँ जाकर रुकेगा। परन्तु इसी समय एक दूसरी घटना ऐसी आ घटी, जिससे उसका प्रवाह दूसरी ही ओर फिर गया।

धनेश्वर कुटीके बाहर खड़ा हो सांस रोककर ध्यानसे कुटीके भीतरकी घटनायें देख रहा था। उसकी अज्ञानवस्थामें उसे ग्रास करनेके लिये विपत्ति कराल मूर्त्ति धारण किये अग्रसर होती चली आती थी। एकाएक वह विपत्ति आ पहुंची। किसीने पीछेसे उसे जोरसे एक लात मारी। वह उस भीषण आघातके वेगको सहन न कर सकनेके कारण कुटीमें जा गिरा। गोवर्द्धन और केशव दोनों ही उसे देखकर कांप उठे। उन दोनोंके

हाथका शस्त्र झुक गया और दोनों ही बड़े विस्मयसे धनेश्वरके चेहरेकी ओर देखने लगे।

क्षण भर बाद ही धनेश्वरके शत्रुने भी कुटीमें घुसकर भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया और पिस्तौल लेकर खड़ा हो गया इसी समय धनेश्वर भी उठ खड़ा हुआ—अब उसने देखा कि सामने ही मदन जी खड़ा है।

मदनजीने कर्कश स्वरमें कहा,—"खबरदार, वहीं रहना अब आगे न बढ़ना।"

गोबर्द्धनने पूछा,—"बात क्या है?"

मदनजीने कहा—"बात कुछ नहीं है। यह जासूसकी भांति कान लगाकर तुम दोनोंकी बातें सुन रहा था।"

सुनकर गोबर्द्धन फुंकार मारकर छुरा ऊपरकी ओर उठाता हुआ बोला—"ओह इसे मार डालो! खून करो, टुकड़े टुकड़े कर डालो।"

वाधा देकर प्रभुत्वके स्वरमें मदनजीने कहाः—"ठहरो, पहले यह तो सुन लो कि यह क्या कहता है।" इसके बाद धनेश्वरकी ओर देखकर मदनजीने कहा—"तुम इतनी रात गये, यहां खड़े होकर क्या कर रहे थे?"

धनेश्वरने कहा,—"मैं इसी राहसे जा रहा था। घरमें दीपक जलता देखकर यह देखनेके लिये खड़ा हो गया कि यहां क्या हो रहा है।"

मदन—तुम कितनी देरसे यहां खड़े हो?

धनेश्वर—"एक या दो मिनट।"

मदन—"झूठी बात। मैंने यहाँ आकर देखा, कि दरवाजेके पास एक मनुष्य खड़ा है। पांच मिनट तक मैं यहीं देखता खड़ा रह गया। मुझे मालूम होता है, कि तुम कमसे कम पन्द्रह मिनटसे यहाँ खड़े होकर इनकी बातें सुन रहे हो।"

इतना सुनते ही गोवर्द्धनका मुंह सूख गया। वह बोला—"तुम्हारा अनुमान सत्य है। इसने अवश्य ही हमलोगोंकी बातें सुनी हैं। देखो केशव! आज तुमने मेरा कितना बड़ा अपकार किया है। सचमुच ही तुम्हारे दोषसे किसी दिन मेरा प्राण जायगा।"

अभीतक केशव चुप था। अब वह दृढ़तासे बोला—"डरते क्या हो? मरने बाद क्या मनुष्य बोल सकता है। यह तुम्हारी बात कैसे किसीसे कहेगा?"

गोवर्द्धन केशवका इशारा समझ गया। धनेश्वर केशवका प्रतिद्वन्द्वी था। वह अच्छी तरह समझता था कि धनेश्वरके जीवित रहते वह ताराको कदापि अपना नहीं सकता। इसी लिये उसने गोवर्द्धनको इसे मार डालनेका इशारा किया था।

गोवर्द्धनकी छोटी छोटी आँखें क्रुद्ध सर्प सी चमकने लगीं। वह छुरा निकालकर धनेश्वरको मारना ही चाहता था, कि इसी समय एकाएक कुटीकी दूसरी कोठड़ीका दरवाजा खुल गया और चन्द्रकला झपटकर दोनोंके बीचमें आ खड़ी हुई तथा जोरसे चिल्लाकर बोली—"नहीं; तुम कभी यहाँ नरहत्या न कर सकोगे। जाओ, यहाँसे चले जाओ।"

गोवर्द्धन पहले तो अवाक् होकर खड़ा हो गया। इसके बाद बड़े ही कुपित स्वरमें बोला—"राक्षसी! शैतानी!! तुझे यहाँ किसने बुलाया है। दूर हो यहाँसे। अपनी कोठड़ीमें जा—नहीं तो तुझे भी मार डालूंगा। तुझे भी इसके साथ ही साथ जहन्नुममें भेज दूंगा।"

चन्द्रकला भयसे भाग न गयी। न उसने अपने पिताकी आज्ञा ही मानी। वह छुरेके सामने अपनी छाती फुलाकर खड़ी हो गयी—"खून करोगे? करो। मेरी समस्त यन्त्रणायें समाप्त हो जायें, परन्तु तुम इस नवयुवकका खून न कर सकोगे? मुझे मारना चाहो, मार डालो—नारी-हत्यारूपी महापातकमें डूबना चाहो, डूबो।"

पाखण्डी केशव तथा मदनके पिशाच हृदयपर आघात लगा। वे माथा झुकाकर चुपचाप खड़े हो गये, इसी समय धनेश्वरने कहा—"तुम क्यों मेरे लिये प्राण गँवानेको तय्यार हो? जाओ, तुम यहाँसे हट जाओ। यदि मरना पड़ा तो मैं अकेला ही मरूँगा।"

इसी समय चन्द्रकलाको जबर्दस्ती हटाकर गोवर्द्धन धनेश्वर पर आक्रमण करनेकी चेष्टा करने लगा। चन्द्रकलाका शरीर भी अवसन्न होने लगा। वह मन ही मन सोचने लगी, कि युवककी अब रक्षा करना कठिन है। एकाएक उसने दीवारपर जोरसे लात मारी। दीवारपर रखा हुआ दीपक जमीनमें गिरकर बुझ गया। कुटीमें घोर अन्धकार छा गया। साथ ही

दुर्बलता तथा मानसिक उत्तेजनावश चन्द्रकलाका भी माथा घूमने लगा और वह भी उसी स्थानपर एक ओर वेहोश हो गिर पड़ी ।

बारहवां परिच्छेद ।

तारा और चन्द्रकला ।

दूसरे दिन सवेरे दुर्गाभवनमें हलचल मच गयी । सभी अपने अपने शयन-कक्षसे बाहर निकले ; परन्तु धनेश्वर न निकला । एक नौकरने आकर समाचार दिया, कि वह अपने कमरेमें नहीं है । मदनजी वहीं थे—उन्होंने कहा—"कहीं गया होगा—अभी आता ही होगा ।"

शङ्करराव भी वहीं थे । उन्होंने सब बातें सुनी, परन्तु कोई उत्तर न दिया । उनके मनमें कुछ दूसरा ही सन्देह था । धनेश्वर कालूराय नहीं है अथवा गत रात्रिमें कालूरायका वेश धारणकर जो दो मनुष्य दुर्गा-भवनमें आये थे, उन दोनोंमें कोई भी कालू-राय नहीं है—इसका यथेष्ट प्रमाण उन्हें प्राप्त हो चुका था । उनकी यह धारणा हो रही है, कि धनेश्वर चोर या बदमाश है—अपने पकड़े जानेके भयसे ही कालूरायका वेश धारणकर दुर्गा-भवनमें जो कुछ मिला है, वह लेकर भाग गया है । इसी तरह

समय जितना ही बढ़ता गया, उनका सन्देह भी उतना ही दृढ़ होता गया।

रत्नेश्वर भी उसी होटलका एक कर्म्मचारी था। उसने एक पत्र लाकर शंकररावके हाथमें देते हुए कहा—"यह धनेश्वरके तकियेके नीचे पड़ा था। मालूम होता है कि ले जाना भूल गया है।"

षट्चक्र दलवालोंने धनेश्वरको मृत्युभय दिखाकर उसे शिव-निवास त्यागनेके लिये जिस पत्रमें लिखा था, यह वही पत्र था। पत्र पढ़कर शंकर रावका मुखभाव और भी गम्भीर हो गया। वे मन ही मन सोचने लगे—"शायद इसी कारणसे धनेश्वर भाग गया है। तब तो मैंने उसपर वृथा ही सन्देह किया।"

वे फिर क्षणभर भी बिलम्ब न कर दुर्गा-भवनसे बाहर निकल पड़े। थोड़ी देर बाद ही तिनुआसे उनकी भेंट हुई। उन्होंने उससे धनेश्वरके सम्बन्धकी सारी बातें कहीं। सुनकर तिनुआने कहा—"अच्छा ही हुआ है। धनेश्वर मारा गया है।"

शंकरराव काँप उठे। बोले—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ? तुमने कैसे जाना, कि वह मारा गया है।"

तिनुआ बोला—"आज सवेरेही मैं उस पहाड़ी झरनेके पास-से जा रहा था। देखा कि एक मनुष्य पहाड़तलीमें गड़हा खोद रहा था, उस गड़हेका आकार देखकर तो यही मालूम होता था, कि वह किसी लाशको गाड़नेके लिये ही खोदा जा रहा है।"

शङ्कर—"खोदनेवाला कौन था?"

तिनुआ—"सो नहीं बता सकता। उस समय अन्धेरा था। दूरसे पहचान न सका। परन्तु जगह दिखा सकता हूं।"

इसके बाद दोनो उसी ओर रवाना हुए। उस स्थानपर जाकर शंकररावने मिट्टीकी अवस्था देखकर समझ लिया, कि यह तुरन्तकी खोदी हुई मिट्टी है। यह देखतेही उन्होने तिनुआके हाथसे बन्दूक ले उसकी संगीनसे उस स्थानको खोदना आरम्भ किया। जमीन खोद डाली गयी, परन्तु गड़हेमें कोई लाश न निकली—केवल रक्तसे भरा एक वस्त्रखण्ड दिखायी दिया। अब चिन्तित होकर शङ्कर रावने पूछा—'उस मनुष्यने क्या तुम्हें देखा था?"

तिनुआ—"यह कैसे बताऊँ?"

शङ्कर—"मालूम होता है, कि उसने तुम्हें देख लिया था, इसीलिये लाश दूसरी जगह छिपा दी है। परन्तु इसी बातका क्या प्रमाण है कि लाश धनेश्वरकी ही थी? दूसरेकी भी तो हो सकती है।"

अब वे पहाड़ीपर चढ़ने लगे। सामनेही गोवर्द्धनकी कुटी दिखायी दी। तुरन्त ही उनके मनमें यह खयाल हो उठा—क्या इस घटनासे गोवर्द्धनका कोई सम्बन्ध है? असम्भव नहीं है। उसी समय वे तिनुआसे उसी जगह ठहरनेके लिये कहकर गोवर्द्धनकी कुटी को ओर रवाना हुए।

दूरसे ही शंङ्कर रावने देखा, कि चन्द्रकला कुटीके दरवाजेपर खड़ी है। पास जाकर देखा, कि दरवाजा बन्द है। चन्द्रकला भीतर चली गयी। उन्होने उसका नाम लेकर पुकारा, दरवाजेमें कई बार धक्का दिया, परन्तु चन्द्रकलाने दरवाजा न खोला। शंङ्कर व्यर्थ मनोरथ होकर तिनुआके पास चले आये।

वहांसे दोनो ताराके पास जा पहुँचे। शंङ्कर रावने उसे सब बातें समझा कर कहीं। यह समाचार सुनकर ताराके शोक और परितापका वारापार न रहा। उसे बहुत तरहसे समझा बुझा कर शङ्करराव चले गये। उनके जातेही एक मोटी चद्दरसे अपना सम्पूर्ण शरीर छिपाकर तारा भी घरसे निकल पड़ी।

इधर शङ्कररावके जातेही चन्द्रकला दरवाजा खोलकर फिर दरवाजेपर आ खड़ी हुई। इसबार उसकी आँखोंसे भी आँसुओं की धारा बह रही थी। एकाएक इसी समय एक युवती उसके सामने आकर खड़ी हो गयी और चन्द्रकलाके कुछ कहनेके पहले ही कुटीमें घुसकर चौकीपर बैठ गयी।

यह युवती तारा ही थी।

ताराको देखकर चन्द्रकला चौंक उठी। ताराने कहा—"क्यों, इस बार दरवाजा न बन्द कर लिया?"

चन्द्रकला—"क्यों, दरवाजा क्यों बन्द करती।"

तारा—"उसी कारणसे, जिस कारणसे शङ्कररावको देखकर तुमने दरवाजा बन्द कर लिया था। अच्छा उन बातोंको रहने दो। मैं तुमसे कुछ पूछने आयी हूं।"

चन्द्रकला—"क्या ?"

तारा—"धनेश्वर कहाँ है ?"

चन्द्रकला—"मैं क्या जानूँ ? यहाँ तो वे कभी आते नहीं। मैं तो उन्हें पहचानती भी नहीं और ..."

कहते कहते चन्द्रकलाका कण्ठस्वर काँपने लगा। ताराने कुछ अप्रसन्न भावसे कहा—"खूब पहचानती हो ? खूब जानती हो ? झूठ बोलती हो ? धनेश्वर कल रात्रिके समय मारा गया है, तुमलोगोंने ही उसे मारा है। बताओ उसकी लाश कहाँ छिपा रक्खी है ?"

चन्द्रकला—"हमलोगोंने उन्हें मारकर लाश छिपा रखी है—यह किसने तुमसे कहा ?

तारा—"तुमारे पिता डाकू हैं—चोरी, डकैती, खून करना—यही उनका व्यवसाय है। यह उनका ही काम है, फिर तुम नहीं जानती ? तुम तो उनकी ही कन्या हो।"

चन्द्रकलाकी आँखोंमें जल भर आया। व्यथिता, मर्म्म पीड़िता होकर उसने कहा—"इसलिये क्या मैं अपराधिनी हूं। यदि मेरे पिता कोई कुकर्म्म करें तो मैं अपराधिनी कैसे हो सकती हूं।"

तारा—"तुमने अवश्यही अपने पिताके पाप कर्म्ममें सहायता दी है। गोवर्द्धनके समानही तुम्हारा हाथ भी नर-रक्तसे कलुषित हो रहा है। चन्द्रकला, यदि तुम पिशाच-कन्या—दस्यु-दुहिता न होतीं, तो समझती कि तुमलोगोंने मेरा कितना बड़ा अपकार

किया है। तुम भी तो स्त्री हो, युवती हो, युवतीका मनःकष्ट समझनेकी तुममें शक्ति है। समझ देखो कि धनेश्वरकी हत्याकर तुमलोगोंने मेरे हृदयपर कैसा ब्रजाघात किया है।"

चन्द्रकलाकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। उसका कण्ठ-स्वर रुद्ध हो गया। वह ताराकी बातोंका उत्तर न दे सकी। ताराने फिर कहा—"बताओ, चन्द्रकला! तुमलोगोंने लाश कहाँ छिपा रखी है?"

इस वार चन्द्रकलाने अपने वस्त्र में से एक छुरा निकाल कर ताराके पैरोंके पास फेंक दिया। इसके बाद घुटने टेककर उसके सामने बैठकर कहा—"मुझे बार बार क्यों मनःकष्ट देती हो? यह छुरा लो और मेरे कलेजेमें भोंक दो। मेरे सब कष्टोंका यहीं अन्त हो जाय।"

तारा भयसे पीछे सरक गयी। बोली—"नहीं, नहीं। मैं उस लिये नहीं आयी हूं।"

चन्द्रकला—"फिर तुम वृथा ही मुझपर क्यों सन्देह करती हो। क्यों भयसे पीछे हटती हो, लो यह छुरा मेरे कलेजेमें भोंक दो। चोर डाकू और खूनीकी कन्याके लिये कोई भी एक बूंद आसू न गिरायेगा।"

तारा—"तुम स्त्री हो—

चन्द्रकला—"बड़े दुर्भाग्यसे मेरा नारी कुलमें जन्म हुआ है।"

ताराका हृदय विचलित हो उठा। कुछ क्षण पहले जो हृदय प्रतिहिंसा वृत्तिसे उत्तेजित हो रहा था, चन्द्रकलाकी

सरल और दुःखभरी वाचावलीसे वह पसीज उठा। ताराने चन्द्रकलाका हाथ पकड़कर उसे उठाते हुए रमणी सुलभ स्नेह पूर्ण स्वरसे कहा—"क्षमा करो चन्द्रकला! मैं शोक और दुःखसे पागली हो गयी हूं। इसीसे बिना समझे बूझे तुम्हारे साथ रूढ़ व्यवहार किया है। मुझे मालूम होता है कि तुम्हारा जीवन भी सुखपूर्ण नहीं है। अब बताओ बहन! क्या सचमुच ही धनेश्वरका हाल कुछ भी मालूम नहीं है?"

चन्द्रकलाने आंखें पोंछकर कहा—"नहीं"

ताराने वहाँसे उठते हुए कहा—"अब मैं तुमसे कभी कुछ न पूछूंगी। तुम मेरे व्यवहारसे अत्यन्त दुःखित हो गयी हो, परन्तु यदि तुम्हारी भी मुझ जैसी अवस्था होती, तो तुम भी ऐसा ही करती।"

इतना कह तारा उठकर चली गयी। चन्द्रकला उसी स्थानपर बैठकर रोने लगी। कब तक वह इसी तरह बैठी रही यह स्मरण नहीं; परन्तु एकाएक कुटी का दरवाज़ा खुलनेका शब्द सुनकर वह चौंक पड़ी। उसने आँखें उठाकर उसी ओर देखा कि अपूर्व मूर्ति उसके सामने खड़ी है। चन्द्रकला भयसे उठ खड़ी हुई। उसने शंका भरे स्वरमें पूछा—"तुम कौन?"

आगन्तुकने कहा—"मैं कालूराय।"

युवती भयसे चिल्ला उठी।

इसी समय कालूरायने नम्रस्वरमें कहा—"डरो मत। तुमने क्या कभी सुना है, कि कालूरायने किसी दीन पुरुष अथवा

असहाया रमणीपर अत्याचार किया है? डरो मत मैं तुम्हारा कोई अनिष्ट न करुँगा।"

चन्द्रकला—"परन्तु तुम यहाँ क्यों आये हो। कोई देख लेगा तो अभी पकड़ जाओगे।"

काल्लू—"मैं अच्छी तरह जानता हूं, कि लोगोंका मुझपर बड़ा स्नेह है। अब मैं यहाँ किस लिये आया हूं, सो सुनो। तुम्हारे पिता और तुम बहुत दिनोंसे यहाँ रहते हो, परन्तु बीचमें कुछ दिनोंके लिये तुम दोनों यहाँसे चले गये थे। यद्यपि शिवनिवास का और कोई भी मनुष्य यह समाचार नहीं जानता, तथापि मैं जानता हूं। अब मैं पूछता हूं कि सम्बत १९६८ मि० ज्येष्ठ कृष्ण ५ मीं के दिवस तुमलोग कहाँ थे?।"

चन्द्रकलाका मुख अत्यन्त मलिन हो गया। उसके अंग प्रत्यंगसे भयका लक्षण प्रकाशित होने लगा। उसने बड़े साहससे कहा—"यह तुम क्या कह रहे हो, मैं कुछ भी समझ नहीं सकती। हमलोग तो शिवनिवास त्यागकर कहीं नहीं गये थे।"

काल्—"तुम अपने अयोग्य पिताके पाप कार्यको छिपानेकी वृथा ही चेष्टा करती हो। यद्यपि इससे तुम्हारे हृदयका महत्व प्रकट होता है तथापि तुम्हारे पापका बोझा बढ़ता ही जाता है। झूठी बातोंसे पाप नहीं छिपता। परन्तु देखो, तुम्हारी बाहरी आकृति जितनी ही सुन्दर है, हृदय भी वैसा ही उदार तथा महत है, इसी लिये तुम गोवर्द्धन जैसे पाखण्डी और अत्याचारी

पिताको भी पापकी कलङ्क-कालिमासे बचाना चाहती हो। मैं सत्य कहता हूं, कि तुम दोनों वास्तवमें उस समय यहाँ न थे। तुम अपने बापके साथ अवश्यही गयी थी, परन्तु वह यहाँसे जिस लिये गया था—वह शायद तुम उस समय भी नहीं जानती थी और अब भी नहीं जानती हो।"

चन्द्रकला—"फिर मुझसे क्यों पूछते हो? फिर क्यों मुझे उस कर्म्मके लिये अपराधिनी ठहराते हो?"

कालू—"तुम्हें अपराधिनी नहीं कहते। केवल पाप छिपानेकी चेष्टा करते देखकर ही इतनी बात कही है। परन्तु यह बात ठीक है कि १९६८ के मि० जेष्ठ कृष्णा ४ के दिवस तुमलोग यहाँसे गये थे, पंचमीको रात्रिके समय यहाँ न लौटे और छठके दिवस जब लौट आये, तो तुम्हारे पिताके पास बहुतसे नोट और नगद रूपये थे। उसी दिन तुमलोगोंने सुना था कि सताराके किसी कोठीवालेके यहाँ डाका पड़ा, वे सब धन सम्पत्ति लूट ले गये। दरवान मारा गया। क्या उस समय भी तुम न समझ सकीं, कि तुम्हारे पिता कहाँ गये थे?"

चन्द्रकला—"तुम किस साहस-वश पिता पर इस तरह दोषा-रोपण कर रहे हो। यदि वास्तवमें वैसी कोई घटना घटी हो तो पिताकी अपेक्षा तुम्हीं उसका अधिक समाचार जानते हो। जिस दस्युके भयसे लोग रात्रिमें सुखकी नींद नहीं सो सकते, दिनमें आरामसे भोजन नहीं कर पाते—उसके मुंहसे दूसरोंके प्रति ऐसी बातें शोभा नहीं पातीं।"

कालू—"ठहरो, अभी मेरी बात समाप्त नहीं हुई है। अपने वक्तव्यका प्रधान अंश मैंने अबतक नहीं कहा है।,'

इसी समय किसीने दरवाजेमें धक्का दिया। चन्द्रकला भयसे बोल उठी—"पिता आ गये।"

कालूरायने कुछ उद्विग्न होकर कहा—"मैं इस समय तुम्हारे पितासे नहीं मिलना चाहता। यदि एक नरहत्या बचाना चाहो तो मुझे छिपा दो। मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं।"

दस्यु उत्तरकी राह न देखकर दूसरी कोठरीमें जा छिपा। चन्द्रकलाने दरवाज़ा खोल दिया। गोवर्द्धनने भीतर जाकर भोजन मांगा। भोजन समाप्त करनेके बाद गोवर्द्धन कुटीका दरवाज़ा बन्दकर चन्द्रकलाके सामने आ खड़ा हुआ और कर्कश स्वरमें बोला—'आज तुम्हारे यहाँ कौन कौन आया था?"

चन्द्रकला—"तारा और शङ्कर। शङ्करको भीतर न घुसने दिया।"

गोवर्द्धन—"झूठी बात! तुने क्या मुझे पागल और मूर्ख समझ लिया है मैंने इस पहाड़में छिपकर सब सुना है।"

चन्द्रकला—"झूठ क्यों बोलूंगी। मैंने उसे देखते ही दरवाज़ा बन्द कर लिया था।"

गोवर्द्धन—"फिर झूठ बोलती है। मैंने अपनी आँखों देखा है, कि वह भीतर आया था। तू पिशाचिनी, शैतानी है। तूने मेरा बड़ा अपकार किया है। वह तेरा अपना और मैं पराया हूं। तूने उसे मेरी सब बातें बता दीं। तेरे ही कारण
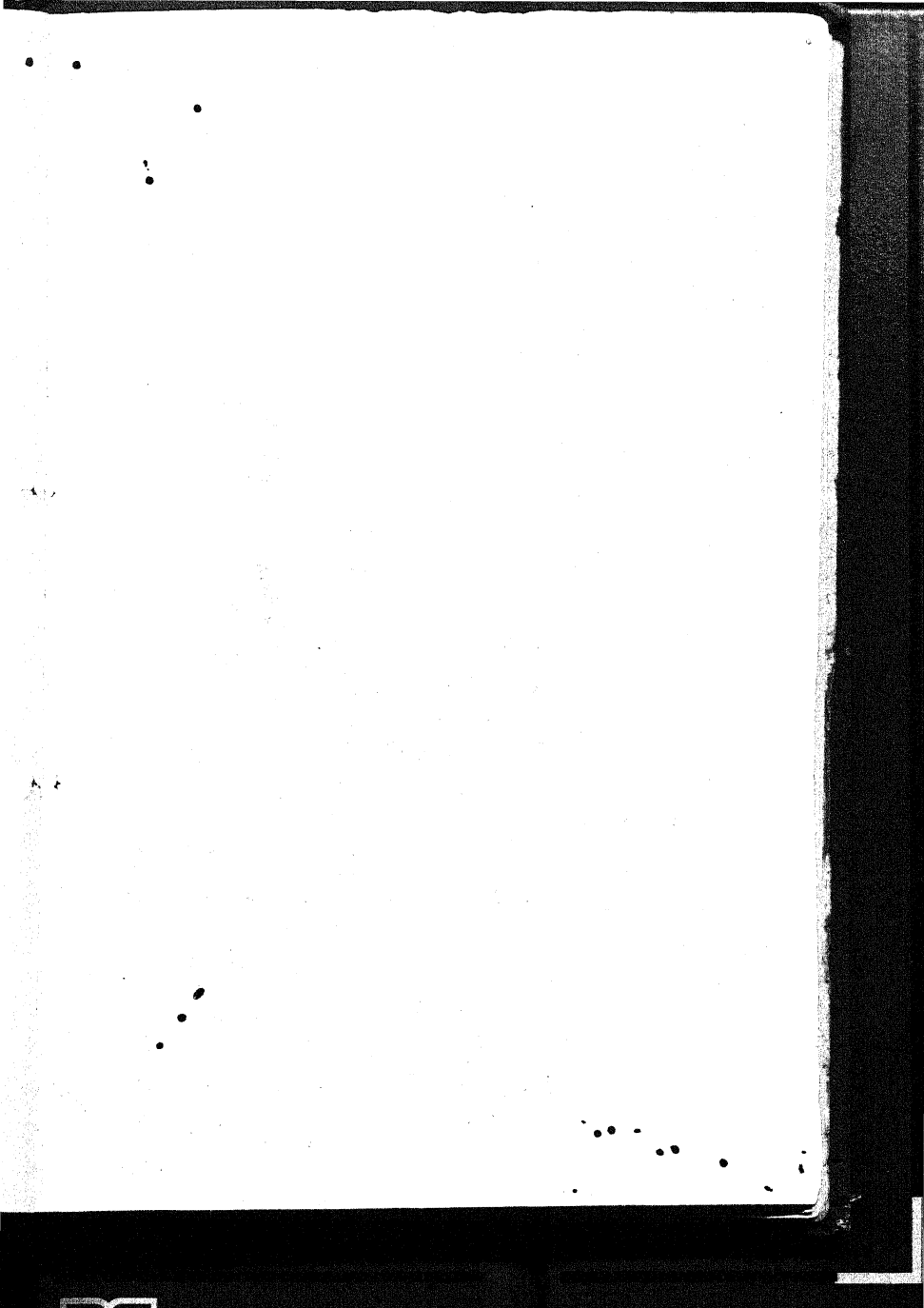
दानवी लीला

बन्द कुटीकी हल्की रोशनीमें चमकीला छुरा भीषणतासे चमक उठा।

अब मुझे फाँसी चढ़ना पड़ेगा। परन्तु तुझे भी जीवित न छोड़ूँगा। तुझे यमलोक भेजकर आज ही मैं यहाँसे चला जाऊँगा।"

इतना कह छुरा निकालकर गोवर्द्धन चन्द्रकलाके पास जा पहुँचा। वन्द कुटीकी हल्की रोशनीमें चमकीला छुरा भीषणतासे चमक उठा।

तेरहवां परिच्छेद ।

चन्द्रकला ।

वर्द्धनका यह भीषण भाव देखकर चन्द्रकला काँप उठी। यह क्या! क्या वास्तवमें बुरी संगतिका बुरा फल ही होता है? कुछ क्षणतक भयसे उसके मुँहसे शब्द न निकला। इसके बाद उसने मनमें साहस ला, कातरतासे कहा—"पिता! क्या सचमुच ही तुम अपने हाथों अपनी कन्याकी हत्या करोगे?"

गोवर्द्धन ठठाकर हँस पड़ा। विकृतस्वरमें बोला—"मेरी कन्या! नहीं शैतानी, तू मेरी कन्या नहीं है। अपने मृत्युकालमें यह अच्छी तरह समझ ले, कि मेरे औरससे तुझ जैसी भुजङ्गिनी नहीं उत्पन्न हो सकती। तेरे शरीरमें मेरे रक्तकी एक

बून्द भी नहीं है। तुझे मारकर आज मैं अपनी चिर-पोषित शत्रुताकी पूर्णाहुति करूँगा। मैं तुझे हृदयसे घृणा करता हूं।"

चन्द्रकलाने सब सुना। गोवर्द्धनकी बातपर उसे पूर्णतया विश्वास हो गया। परन्तु इस अन्तिम-कालमें, मृत्युके दरवाजे पर खड़ी होकर, उसने जो कुछ सुना—उससे उसको कोई लाभ नहीं हुआ। चन्द्रकला मन ही मन सोचने लगी—"क्या इस समाचारसे मेरा कोई लाभ है?" तुरन्त ही उसके मनने उसे उत्तर दिया—"अवश्य है। अब मैं सुखसे मर सकूंगी।"

पिशाच गोवर्द्धनने अपने दाहिने हाथमें छुरा लेकर बायें हाथसे उसके लहराते हुए विशाल केश करुवर पकड़ लिये। इसके बाद कर्कश स्वरमें बोला--"अभागिनी! जरा एकबार विचार तो कर, कि गोवर्द्धनसे शत्रुता करनेवालेकी कैसी सुखपूर्ण मृत्यु होती है। विश्वासघातिनी—इसबार तू......"

"खबरदार, क्या करते हो?" गोवर्द्धनके पीछेसे किसीने जोरसे चिल्लाकर कहा। अपने कार्यमें वाधा पड़ती देखकर गोवर्द्धनने मुंह फेर पीछेकी ओर देखा—मदनजी खड़े हैं।

उस समय क्रोधसे गोवर्द्धनके शरीरका रक्त उत्तप्त हो गया था। उसने कुपित स्वरमें कहा—"मैं जो इच्छा, करता हूं। तुम्हें क्या?"

मदनजी—'पर मैं इस निर्दयतासे एक निरपराधिनी रमणीका जीवन न नष्ट होने दूंगा।"

साथ न छोड़ती था। अब वह सम्बन्ध-बन्धन टूट गया। अब यहां रहनेकी जरूरत ही क्या है?

चन्द्रकला अब तक समझती थी, कि गोवर्द्धन उसका पिता है—पापी होनेपर भी जन्मदाता है। पिता चोर डाकू, खूनी कुछ भी हो, वह पिता ही है। अपने पिताको पाप मार्गपर विचरण करते देखकर उसको मर्म्मान्तिक कष्ट होता था, कलेजा टूक-टूक हो जाता था, वह उसके पाप-कार्यको भूलकर भी न भूल सकती थी—इतनेपर भी उसे त्याग न सकती थी।

परन्तु आज वह भाव न रहा। वह अटूट बन्धन—वह अन्ध-विश्वास आज दूर हो गया। चन्द्रकला आज गगन-चारी पक्षीकी भांति उड़ जानेके लिये तय्यार हो गयीं।

शैशवसे ही चन्द्रकलामें यथेष्ट साहस था। चित्तमें दृढ़ता थी और मनमें एक प्रकारको प्रबलता थी। अतः गोवर्द्धनको त्यागनेकी कल्पनाके उदय होते ही वह अपनी इच्छाको कार्य्यमें परिणत करनेके लिये तय्यार हो गयी।

जिस कोठड़ीमें चन्द्रकला सोती थी अथवा इस समय पड़ी पड़ी अपनी अवस्थाका अनुशीलन कर रहीं थी, उसमें एक खिड़की थी। परन्तु उसके छड़ काठके और बहुत पुराने थे। उस समय मदनजीके साथ बैठकर गोवर्द्धन आनन्दसे मद्यपान कर रहा था। चन्द्रकलाने इस अवसरन को उपयुक्त समझकर खिड़कीके छड़ उखाड़ डाले और बड़ी तेजीसे उस खिड़कीको राहसे निकलकर पहाड़ीकी ओर भाग गयी।

इधर सुरापान करते करते गोवर्द्धनने कहा—"क्या जासूस कोई योग साधे रहते हैं। मारनेपर भी ये नहीं मरते। कितनी ही चेष्टा करो उनका एक बाल भी बांका नहीं होता।"

मदन—"ठीक ही कहते हो, नहीं तो शङ्कर अबतक जीवित नहीं रहता। उसके मनमें यह धारणा बैठ गयी है, कि मैं ही कालूराय हूं, इसी लिये आज छः वर्षसे मेरे पीछे पड़ा है।"

गोवर्द्धन—"तब क्या तुम कालूराय नहीं हो ?"

मदन—"मैं ? पागल तो न हो गये हो ? मैंने तो आज तक उसे देखा भी नहीं है। देखता तो क्या छोड़ देता ? अवश्य ही पुलिसके सुपुर्द कर देता। उसे पकड़नेके लिये सरकारकी ओरसे पांच हजारका पुरस्कार देनेकी बात कहीं गयी है।" ओह ! यह क्या थोड़ी रक़म है ?"

गोवर्द्धन—"यह कौन कहता है ? मुझे मिले तो क्या मैं छोड़ दूँ ?"

मदन—"मैं समझता हूं, कि केशव ही कालूराय है।"

गोवर्द्धन—"असम्भव।"

मदन—"असम्भव कुछ भी नहीं है। मैंने उसपर खूब सतर्क दृष्टि रखी है।"

बातें करते करते शराब समाप्त हो गयी। गोवर्द्धन दूसरी बोतल लानेके लिये ज्योंही कोठड़ीमें घुसा, त्योंही चन्द्रकलाको न देखकर आश्चर्य्य-चकित हो गया। उसने चिल्लाकर मदनजीको पुकारते हुए कहा—"बन्धु ! यह दूसरी विपद आ पहुँची। चिड़िया उड़ गयी।"

मदनने भी भीतर जाकर देखा। वास्तवमें चन्द्रकलाका कहीं भी पता न था। उसने विरक्ति भरे स्वरमें कहा,—"यह तुम्हारी मूर्खताका ही भीषण परिणाम है।"

गोवर्द्धन—"स्त्रियां बड़ी नमकहराम होती हैं। कृतज्ञता किस चिड़ियाका नाम है, यह तो वे जानती ही नहीं।"

मदन—"सभी बातोंकी एक सीमा रहती है। उसपर क्या तुमने कम अत्याचार किया है? आज उसका प्राण ही लेने चले थे। इसी भयसे वह भाग गयी हैं। परन्तु उसे किसी न किसी तरह खोज-लाना पड़ेगा। नहीं तो हमलोगोंकी कुशल नहीं है। यदि उसने कोई बात किसीसे कह दी, तो अवश्य ही हमलोगोंके हाथमें हथकड़ी पड़ेगी।"

भयसे गोवर्द्धन विह्वल हो गया। कातर स्वरमें बोला—"अब उपाय? न जाने किधर भाग गयी! कैसे पता लगेगा?"

क्षणभर सोचकर मदनजीने कहा—"ठहरो, मैं सिंहाको बुलाता हूं।

सिंहा मदनजीका पालतू शिकारी कुत्ता था। वह किसीकी गन्धसे ही उसे खोज निकाल सकता था।

मदनजीने सिंहाको लाकर चन्द्रकलाके वस्त्र उसे सुंघाये। इसके बाद उसे छोड़ दिया। सिंहा अपने मालिककी इच्छा समझकर, एकबार जोरसे गरज खिड़की पर जा चढ़ा और फिर तुरन्त ही बाहर कूद पड़ा। मदन और गोवर्द्धन कुटीसे बाहर निकलकर उसके पीछे पीछे चले।

सिंहा कुटीसे बाहर निकलकर जमीन सूंघता हुआ पर्वतकी तरफ उसी ओर चला जिधर चन्द्रकला गयी थी। वह कुछ दूर जाता और जोरसे गरज उठता था। वह इस समय इतनी तेजीसे आगे बढ़ रहा था, कि मदनजी और गोवर्द्धन किसी तरह भी उसका अनुसरण न कर सके। मदनजी बारबार उसे पुकारने लगे, परन्तु वह किसी तरह भी न लौटा; बल्कि और भी उत्साहसे आगे बढ़ता ही गया। यह देखकर मदनजीने कहा—"बड़ा कठिन काम है। चन्द्रकलाको देखते ही सिंहा उसे नोच डालेगा। सिंहा! सिंहा!!

परन्तु सिंहा जोरसे गरजता हुआ पहाड़पर चढ़ता ही गया।

इधर चन्द्रकलाने सिंहाकी गरजना सुनकर ही समझ लिया, कि अब बचनेकी कोई आशा नहीं है। अभागिनीने भयप्रकम्पित स्वरमें कहा—"हे ईश्वर! रक्षा करो। अन्तमें क्या कुत्ते द्वारा मेरी मृत्यु होगी। हा! उस समय गोवर्द्धनके हाथों मरती तो वही अच्छा होता।"

प्राणोंकी बड़ी ममता होती है। अभागिनी प्राणपणसे दौड़ लगी। परन्तु जितना ही वह आगे बढ़ने लगी, सिंहा भी उतनी ही शीघ्रतासे उसका पीछा करता गया। गोवर्द्धन और मदनका कण्ठस्वर भी उसके कानोंमें पहुँचने लगा।

चन्द्रकला और भी जोरसे दौड़ने लगी। एक तो अंधकार तिसपर पहाड़ी। कुछ दूर और आगे बढ़नेपर चन्द्रकलाके

पैरोंमें ज़ोरसे ठोकर लगी। वह एक गड़हेमें जा गिरी। सिंहाका गरजना और भी पास सुन पड़ने लगा। वह दाँत निकालकर उसी गड़हेकी ओर झपट पड़ा और ऊपर खड़ा होकर गरजने लगा।

एकाएक चन्द्रकलाके मनमें एक बात आ गयी। उसने भयकम्पित कण्ठसे पुकारा—"सिंहा!"

सिंहा किंकर्त्तव्य-बिमूढ़ हो गया। क्षणभरके लिये मानो अपना कर्त्तव्य सोचनेके लिये खड़ा हो गया। अन्धकारमें आकाशके तारेके समान उसकी दोनों गोल गोल आँखें चमक रही थीं। इसी समय चन्द्रकलाने फिर पुकारा—"सिंहा! सिंहा!"

सिंहा फिर गरज उठा, परन्तु इसबार उतने भीषण रवसे नहीं, साथ ही अपनी पूंछ भी हिलाने लगा। और आनन्दसूचक शब्द करता हुआ नीचे उतरनेकी चेष्टा करने लगा।

चन्द्रकला साहसकर उठ बैठी और बार बार प्रेम-भरे स्वरमें उसे पुकारने लगी। सिंहा भी उसके पास जाकर पूछ हिलाता हुआ उसके पैर चाटने लगा।

इसका कारण यह था, कि सिंहा कईबार मदनजीके साथ गोवर्द्धनके मकानपर गया था। उस समय चन्द्रकला उसे बराबर भोजन दिया करती थी। कुत्ता रहनेपर भी सिंहा वह ऋण न भूला था। पशु होनेपर भी अपने पिताके समान कृतघ्न-पिशाच न था। इसी लिये जब चन्द्रकलाने अपनी दोनों बाहें

उसके गलेमें डाल, उसपर स्नेह-प्रदर्शन करना आरम्भ किया, उस समय वह अपने मालिककी आज्ञा, शत्रुता भूलकर, हिंसाको जलाञ्जलि दे, युवती चन्द्रकलाका गुलाम बन बैठा।

मदनने बार-बार चिल्लाकर सिंहाको पुकारा। सिंहाने यह पुकार सुनकर भी कोई उत्तर न दिया। चन्द्रकलाके पैरोंके पास लोटकर आनन्दसे पूछ हिलाने लगा।

इस समय मदन और गोवर्द्धन पहाड़ीके ऊपर जा चढ़े। चन्द्रकला बहुत नीचे रह गयी। वह अब मन ही मन अपने छिपनेका स्थान ढूंढने लगी। एकाएक उसे एक गुहा स्मरण हो आयी। पहाड़ीपर भ्रमण करते समय यह गुहा उसे एक दिवस दिखाई दे गयी थी। इस गुहाका स्मरण आते ही, चन्द्रकला उठ खड़ी हुई। इसी समय उसे एक बात और भी याद आ गयी—खाउँगी क्या?

चन्द्रकलाका सुन्दर ललाट कुञ्चित और दृष्टि स्थिर हो गयी। युवतीने एक असम साहसिक कार्य करना चाहा। उसने सोचा—कुटीमें इस समय कोई न होगा। इस समय यदि वहाँसे खाद्य-पदार्थ ले आऊँ तो फिर भोजनकी कोई चिन्ता न रहेगी। वह तुरन्त ही उसी ओर रवाना हुई। सिंहा भी उसी ओर उसके पीछे पीछे चला।

जिस समय मदनजीके साथ गोवर्द्धन चन्द्रकलाको पर्वतपर खोज रहे थे, उसी अवसरमें सुन्दरी चन्द्रकला कुटीमें घुसकर

पाँच-सात दिनोंकी भोजनकी सामग्री ले गुहाकी ओर चल पड़ी। जाते समय उसने एक पिस्तौल भी ले ली।

आध घण्टा बाद ही चन्द्रकला सिंहाके साथ उस गुहामें जा पहुँची।

चौदहवां परिच्छेद।

पूर्णिमाकी रात।

दिवस दो रात्रि और कितने ही दण्डपल बीत गये, परन्तु धनेश्वर न लौटा। सभी उसके लिये उद्विग्न हो उठे। ताराने अन्न-जल त्याग दिया। दो दिनोंतक लगातार परिश्रम करनेपर भी शङ्करको धनेश्वरका कोई पता न लगा। तीसरे दिवस तीसरे पहरके समय शङ्कर राव चिन्तित चित्तसे गोवर्द्धनकी कुटीकी ओर चले। ताराकी बात सुनकर उन्हें विश्वास हो गया था, कि चन्द्रकला धनेश्वर के सम्बन्धमें बहुत कुछ बता सकती है। इसी लिये वे आज चन्द्रकलासे भेट करनेके लिये जा रहे थे।

परन्तु कुटीके दरवाजेपर आकर शङ्कररावने देखा, कि दरवाज़ा बन्द है, बाहरसे ताला लगा हुआ है। शङ्करराव कुछ समझ न सके, कि इसका कारण क्या है। वे अब उस कुटीके पीछेकी

ओर गये और ज्योंही उन्होंने खिड़कीमें धक्का दिया त्योंही उसके किवाड़ भीतर जा गिरे। शङ्करराव कुटीकी अवस्था देखनेके लिये कुटीमें घुस गये। उनके पास ही चोर लालटैन थी। उसे जलाकर भीतरकी अवस्था देखते देखते उनकी दृष्टि एक स्थानपर पड़े हुए रक्तपर जा पड़ी, पर ऐसा मालूम होता था, कि इस रक्तको धो डालनेकी बहुत कुछ चेष्टा की गयी है; परन्तु रक्त किसी तरह साफ न हो सका है।

शङ्करराव मन ही मन सोचने लगे—"यह किसका रक्त है, धनेश्वरका या चन्द्रकलाका? मालूम होता है कि चन्द्रकलाका है। अपने पिशाच पिताके पैशाचिक कार्यका प्रतिवाद करनेके कारण ही इस तरह मारी गयी है और उसे मारकर गोवर्द्धन भाग गया है। यह बात ध्यानमें आते ही शङ्कररावके मनमें कितना कष्ट हुआ, यह भुक्तभोगी ही समझ सकता है। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की "यदि सचमुच ही चन्द्रकलाका खून हुआ है, तो उसका हत्याकारी मेरे प्रतिहिंसानलसे कभी निस्तार न पा सकेगा।"

इतना कह वे उठ खड़े हुए। उठते ही उनकी दृष्टि खिड़की पर जा पड़ी। उन्होंने देखा, कि वाहर एक मनुष्य-मूर्त्ति खड़ी है।

ध्यानसे देखते ही शङ्करराव उसे पहचान गये। यह रत्नेश्वर था। शङ्करने कुटीसे बाहर निकलकर रत्नेश्वरसे पूछा—"तुम यहां क्यों आये हो?"

रत्नेश्वर—"इसी राहसे जा रहा था। आपको खिड़कीकी राह इस कुटीमें घुसते देखकर यहां खड़ा हो गया।"

शङ्कर—"तब तुम्हारी भो मेरी चालोंपर दृष्टि है।"

रत्नेश्वर—"भला इसका क्मा मतलब है?"

शङ्कर—"देखो रत्नेश्वर! तुम अपनेको जितना सरल दिखाना चाहते हो, वास्तवमें उतने सरल नहीं हो। और तुम अपना जो परिचय देते हो, वह तुम्हारा यथार्थ परिचय भी नहीं है।

रत्नेश्वर—"तब मैं कौन हूं?"

शङ्कर—या तो तुम कोई पक्के ठग हो अथवा इस वेशमें कूछ दूसरे ही हो। तुम चाहे जो कोई हो, परन्तु जब तुमपर मेरी दृष्टि जा पड़ी है, तब तुम मुझसे छिपे नहीं रह सकते। देखो, इस समय शिवनिवासमें नित्य प्रति नवीन नवीन घटनायें घटा करती हैं। मेरा अनुमान है, कि इसका केन्द्र यहीं है। मैं अकेला हूं, इसी कारणसे चारों ओर दृष्टि नहीं रख सकता। तुम्हारी सहायताकी बड़ी आवश्यकता है।"

रत्नेश्वरने हंसकर अपनी सम्मति जनायी। इसके बाद दोनों बातें करते हुए, दुर्गा-भवनकी ओर चले गये।

अभी वे वहां पहुँचे ही थे, कि एक भृत्यने शङ्करराचके हाथमें एक पत्र देकर कहा,—"एक मनुष्य यह पत्र दे गया था।

शङ्करराचने पत्र खोल कर पढ़ा। यह लिखा था:—

"आज पूर्णिमा है। सूर्यास्तके बाद ही भद्रगिरिके नीचे मुझसे भेंट होगी।

—कालूराय।

शङ्करराव पत्र पढ़कर कुछ चिन्तित हो उठे। पहले तो इस विषयपर उन्होंने इतना ध्यान न दिया था। अब यह पत्र पाकर वे विचारने लगे, कि क्या करना चाहिये।

सोचते सोचते उन्हें हँसी आ गयी। बोले—"यदि न जाऊँगा तो कालूराय मुझे कापुरुष समझेगा। इसके अतिरिक्त जब इस काममें हाथ डाला है, तो प्राणोंकी ममता करनेसे न चलेगा, उससे भेंट करनी ही होगी।"

इसके पांच मिनिट बाद ही शङ्करराव भद्रगिरिकी ओर रवाना हो गये। उसकी राह बड़ी टेढ़ी और दुर्गम थी। जिस समय वे वहां पहुंचे उस समय सूर्य्यास्त हुए देर हो चुका था। वे बड़ी सावधानतासे निर्दिष्ट स्थानपर उपस्थित होकर इधर उधर देखने लगे, परन्तु कालूरायका कहीं पता न लगा। इसी तरह कुछ समय बीतनेके बाद जिस स्थानपर खड़े थे, उससे अन्दाजन लेकर पचास गजकी दूरीसे पर्वतके उच्च भागसे किसीने उनका नाम पुकारा।

उन्होंने विस्मयसे ऊपरकी ओर देखा। देखा कि उनके ठीक सामने एक ऊँचे शिलाखण्डके पीछेसे केवल माथा निकाल कर कालूराय उन्हें पुकार रहा है।

दस्युका वेश पूर्ववत है। वह बोला,—"तुम आ गये। अच्छा ही हुआ, परन्तु अपनी पिस्तौल न निकालना।"

शङ्कररावने उसी ओर देखते हुए कहा—"डरो मत।"

कालूराय—"एक दिन किसी मनुष्यसे सुना था, कि तुम मुझसे मिलनेके लिये बड़े ही उत्सुक हो। इसी लिये तुम्हें बुलाया है।"

शङ्कर—"झूठी बात नहीं है—अब यदि नीचे उतर आओ तो कृतार्थ होऊँ।"

कालू—"प्रथम भेंटमें ही इतना स्नेह बढ़ना अच्छा नहीं, अब कामको बातें सुनो। आज छः वर्ष पूर्व धनपति-लक्ष्मीपतिका जो खजाना लूटा गया था, क्या तुम समझते हो मैंने ही वह लूटा है।"

शङ्कर—"अवश्य।"

कालू—"भूल, महाभूल! उसका एक पैसा भी मेरे हाथ न लगा। यदि वह सम्पत्ति मेरे पास रहती तो फिर मैं डकैती कदापि न करता।"

शङ्कर—"क्या यह अविश्वास्य उपहास कहानी सुनानेके लिये ही मुझे बुलाया था?"

कालू—"तुम विश्वास करो या न करो जो सच्ची बात है, वह तुम्हें बता दी। तुम्हारा एक पैसा भी मैंने नहीं लिया है। तुम वृथा ही सन्देहवश आज छः वर्षोंसे मेरा पीछा कर रहे हो।"

शङ्कर—"तब तुम यह कहना चाहते हो, कि उस धनका एक पैसा भी तुम्हारे पास नहीं है।"

कालू—"हां।"

शङ्कर—"क्या तुम्हीं असली कालूराय हो?"

कालू—"हां।"

शङ्कर—"फिर वे रूपये कहां गये?"

कालू—"मैं नहीं जानता। मैं भी आज छः वर्षसे उसी धनका पता लगा रहा हूं। अब तुमसे यहीं कहना है, कि मुझे पकड़नेकी चेष्टामें वृथा समय नष्ट न करो। मुझे पकड़ना तुम जैसे जासूसोंका काम नहीं है।"

शंकरराव समझ गये, कि इन बातोंसे कुछ काम न निकलेगा। केवल समय नष्ट हो रहा है। अभी हाथमें एक सुयोग है, फिर मिले या न मिले। इतना सोच उन्होंने पिस्तौल निकालकर उसपर आक्रमण किया। पिस्तौलकी आवाज पहाड़की प्रत्येक कन्दरामें गूँज उठी। जब उनके सामनेका धुआं कम हुआ तो उन्होंने देखा कि नैश-अन्धकारमें भीमकाय देवके समान पर्वत सामने खड़ा है, दस्युका कहीं पता नहीं है। अब वे तेजी से उसी ओर चले जिधर डाकू खड़ा होकर बातें कर रहा था।

बड़े कष्टसे उस स्थानपर जाकर उन्होंने देखा कि जहां कालूराय खड़ा था, उसके पास ही कोई मनुष्य पड़ा है, पास जाकर देखा तो उसमें जीवन नहीं है, कालूराय जैसा वस्त्र पहनता है? इसके सरसे पैरतक भी वैसा ही वस्त्र है। तब क्या यही कालूराय है? इतने दिवस बाद क्या इसी तरह यह कार्य्य समाप्त हुआ?

परन्तु अच्छी तरह परीक्षा करनेपर उन्हें मालूम हुआ; कि इसका वक्षःस्थल छेद्कर गोली पार निकल गयी है। घावसे रक्त निकलना बन्द रहनेपर भी वह ताज़ा—आजका ही है, इसमें सन्देह नहीं। चेहरा भी परिचित मालूम होता है। शङ्कर कुछ चिन्तित—कुछ उद्विग्न हो गये।

एकाएक उनका उदास मुख प्रसन्न हो गया। जो लाश उनके सामने पड़ी थी, गोली ठीक उसकी छाती छेद्कर पार निलक गयी थी। परन्तु उन्होंने पहाड़के नीचे खड़े हो कालूरायका मस्तक लक्ष्य कर गोली चलायी थी। वह गोली कभी छातीमें न लग सकती थी। इस चोटको देखकर यही मालूम होता था, कि किसीने सामने खड़े होकर गोली मारी है। यदि यह उनकी गोलीसे मारा जाता हो आघात अवश्य ही दूसरे ही प्रकारका होता। साथ ही उन्होंने यह भी देखा, कि ऊपर जो वस्त्र ढका है उसमें गोलीका चिन्ह मात्र भी नहीं है, इससे स्पष्ट ही मालूम हो गया, कि किसी दूसरेकी गोलीसे यह मनुष्य मारा गया है और यह वस्त्र पीछेसे उसे पहना दिया गया है।

शङ्करने मन ही मन कहा—"न तो यह मनुष्य मेरी गोलीसे मरा ही है और न यह असली कालूराय ही है। मेरी आँखोंमें धूल झोंकने और इस प्रान्तके मनुष्योंको धोखा देनेके लिये ही यह कौशल रचा गया है। कालूरायने सोचा है, कि मेरी मृत्यु हो गयी समझकर अब पुलिस मुझे पकड़नेकी चेष्टा न करेगी परन्तु मैं उसे सहजमें न छोड़ूँगा।"

शङ्करराव दुर्गाभवनमें लौट आये। इस समय रातके नौ बज चुके थे। वहाँ सभी उपस्थित थे, केवल मदनजीका पता न था। इस घटनासे उन्हें और भी विश्वास हो गया, कि मदनजी ही कालूराय है—इसमें सन्देह नहीं।

इस समय लक्ष्मी पति अपने कमरेमें बैठकर समाचार पत्र पढ़ रहे थे। शङ्कररावने उनके पास जाकर सब बातें कहीं और यह भी कहा—'मदनजी ही कालूराय है। सप्ताह भरके भीतरही मैं उसे अभियुक्त और गिरफ्तार करनेके समस्त प्रमाण संग्रह करनेमें समर्थ होऊँगा।"

इसके बाद उन दोनोंमें षट्चक्रके सम्बन्धमें बातें होने लगी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

घटना चक्र ।

दिन भर शङ्करराव षट्चक्र दलवालोंसे मिलनेका कौशल ही सोचते रहे। संध्या होते ही लक्ष्मी-पति निर्दिष्ट स्थानकी ओर रवाना हुए। उसके पहले ही शङ्कररावने तिनुआ, रामेश्वर, और अन्य दो विश्वासी सहचरोंको निकटवर्ती जंगलमें छिपा रखा था।

निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचते ही लक्ष्मीपतिका साहस कम होने लगा। वे मन-हीमन सोचने लगे, कि षट्चक्र दलवालोंको जब यह मालूम होगा, कि मैं एक पैसा भी अपने साथ नहीं लाया हूँ, तब उनके क्रोधका ठिकाना न रहेगा। तब उनकी कोप-वह्निसे जीवन रक्षा करना कठिन हो जायगा। मैंने आज अच्छा काम न किया।

वास्तवमें स्थान बड़ा ही भयङ्कर था। चारों ओर छोटे बड़े पहाड़—बीचमें घना जङ्गल था। उसी जङ्गलके बीचसे अप्रशस्त पगडण्डी गयी थी। संध्या हो गयी थी। अतः वह पथ और भी दुर्गम हो रहा था।

लक्ष्मीपतिने एकबार अपने चारों ओर देखा; परन्तु कहीं मनुष्य दिखाई न दिया। वे सोचने लगे—मेरे सहायक तो अभी तक आये ही नहीं। अपने सहायकोंको अनुपस्थित देखकर उनका हृदय और भी काँप उठा। ठीक इसी समय किसीने पहाड़ीके ऊपरसे पूछा—"लक्ष्मीपति! रुपये लाये हो?"

लक्ष्मीपति चौंक उठे। वे देख न सके, कि कौन मनुष्य कहाँसे बोल रहा है। उन्होंने साहसकर कहा—"हाँ लाया हूँ।"

उसी पुरुषने फिर कहा—"ऊपर ले आवो।

लक्ष्मीपतिने कहा—"पहाड़पर चढ़नेकी मुझमें शक्ति नहीं है।"

उसीने फिर कहा—"तब तुम पहाड़पर न आवोगे?"

लक्ष्मीपति—"नहीं, तुम नीचें आकर रुपये ले जाओ।"

वह बोला—"लक्ष्मीपति! तुम निरे लक्ष्मी-वाहन ही हो, क्या षटचक्र दलवालोंको तुमने इतना मूर्ख समझ लिया है। हमलोग तुम जैसे मूर्ख नहीं है। हमारा उद्देश्य सफल हो गया है। तुम अब जा सकते हो।"

इसके बाद शब्द आना बन्द हो गया। इसी समय एक मनुष्य कहींसे दौड़ता हुआ आया और झपटकर पहाड़पर चढ़ने लगा। उसके पीछे पीछे एक दूसरा मनुष्य भी ऊपर जा चढ़ा। पहला तिनुवा और दूसरा रत्नेश्वर था।

इसी समय शङ्कररावके अन्य दोनो सहचर जो जंगलमें छिपे थे, अपने गुप्त-स्थानसे निकलकर लक्ष्मीपतिकी बगलमें आ खड़े हुए। दशमिनिट बाद तिनुआ और रत्नेश्वर तो लौट आये, मानो षट्‌चक्रके चक्री किसी तरह पहलेसे ही सावधान हो गये थे अतः वे विपत्तिकी सूचना पाते हीं कहीं अन्तर्द्धान हो गये।

नीचे आकर तिनुवाने पूछा "शङ्कर भयया कहां हैं?"

सभी वहां उपस्थित थे, केवल शङ्कररावका पता न था। रत्नेश्वरने कहा "शायद वे डाकुओंका पीछा कर रहे हों।"

इसी समय जहां खड़े होकर ये बातें कर रहे थे, ठीक उसी स्थानपर छोटे पत्थरके टुकड़ेकी भांति कोई चीज आ गिरी। गिरते ही तिनुआने उसे उठा लिया वास्तवमें पत्थरका एक टुकड़ा ही था, परन्तु उसमें एक पत्र बँधा था। रत्नेश्वरके पास चोर लाल्टेन थी। उसके सहारे पत्र पढ़ते ही, वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये। पत्रमें यह लिखा था:—

"शङ्कररावके जीवनसे हाथ धो बैठो। हमारा उद्देश्य सफल हो गया।" —"षटचक्र"
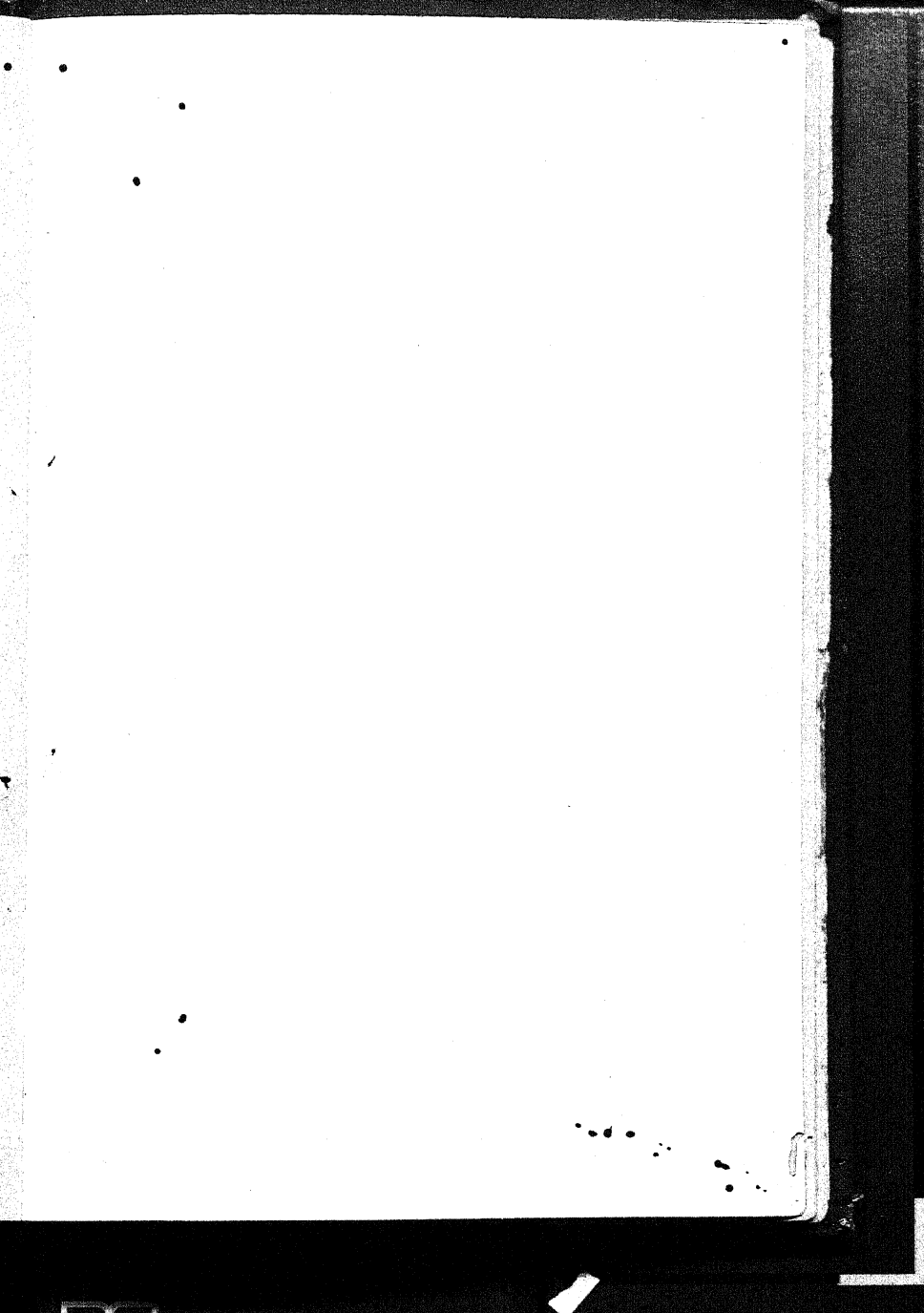
इसके बाद ज्योंही माथा उठाकर उन्होंने ऊपरकी ओर देखा, त्योंही सर्पके समान किसी पदार्थने उनके गलेको लपेट लिया और इसके पहलेही कि वे जान सकें कि वह पदार्थ क्या है, वह ऊपरकी ओर शून्यमें लटकने लगे।

लक्ष्मीपतिके काँपते हुए हाथसे पत्र गिर पड़ा! यह क्या हो गया? डाकुओंको पकड़नेकी चेष्टामें क्या स्वयं शंकरराव ही पकड़ गये? क्या लेने का देना पड़ गया? लाचार सभी निराश चित्तसे अपने अपने निवास स्थानकी ओर लौट पड़े।

* * * * *

शंकरराव निश्चित समयके बहुत पहले ही उस जंगलमें जा पहुंचे थे। उनके आस पास ऊपर नीचे चारों ओर ही दुर्गम पर्वतमाला थी। ऐसी ही स्थान पर खड़े होकर कुछ क्षण तक वे कुछ सोचते रहे। उसके बाद ज्योंही माथा उठा कर उन्होंने ऊपरकी ओर देखा, त्योंही सर्पके समान किसी पदार्थ ने उनके गलेको लपेट लिया और इसके पहले ही, कि वे जान सकें कि वह पदार्थ क्या है, वह ऊपरकी ओर शून्यमें लटकने लगे। उनके श्वास प्रश्वासकी गति बन्द होने लगी। अब वे समझ गये कि शत्रुओंकी यह चालाकी भरी चाल है। उनके यह सोचते न सोचते वे पहाड़के ऊपर जा पहुंचे।

बन्सीमें फँसी मछलीकी तरह वे पहाड़ पर खिंच गये और आत्मरक्षा करनेकी चेष्टा करने अथवा श्वास रोकनेवाली फांसी छुड़ानेके पहले ही तीन बलवान मनुष्योंने एकाएक उन्हें पकड़ लिया और पलक मारते उनके हाथ मुँह बांध दिये।

अब वे पकड़ गये। क्षणभर में ऐन्द्रजालिक लीलाके समान यह घटना घट गयी। इसके बाद शत्रु जबर्दस्ती उन्हें अपने साथ ले पहाड़ ही पहाड़ बहुत दूर चले गये। इसके बाद एक

स्थान पर पहुंच कर उनमें से एकने कहा—"यह देखो, षट्चक्र।"

यहां लाकर शंकरराव का बन्धन खोल दिया गया। उन्होंने देखा, कि सामने एक पहाड़ी गुहा है जिसमें एक मोटी मशाल जल रही है, चार सशस्त्र भीषणकाय मनुष्य खड़े हैं जिनका चेहरा वस्त्रोंसे छिपा है—सामने ही पत्थर पर एक मनुष्य बैठा है। वह भी अपनेको छिपानेके लिये सरसे पैर तक काला चोगा पहने है। यह उन्हें षट्चक्र दलका दलपति मालूम हुआ।

उसी मनुष्यने कहा,—"शंकरराव! तुम इस समय कहां हो?"

शङ्कर—"मैं समझता हूं, कि जहां हूं। तुम कौन हो?"

वह—"मैं इस षट्चक्र दलका दलपति हूं। मेरा नाम भैरव है। लोग मुझे इस दलका सरदार कहते हैं।"

शङ्कर—"मुझे क्यों पकड़ लाये हो?"

भैरव—"सुनो, तुम अपनेको बड़ा चतुर समझते हो। परन्तु वास्तवमें चतुर नहीं हो, यदि चतुर होते तो इस तरह अनाड़ीकी भांति यहां आकर हमारे जालमें न फंस जाते। तुम्हें हस्तगत करनेके लिये ही यह चाल चली गयी थी। किसी तरह लक्ष्मीपतिके शिवनिवास आनेकी खबर पाकर हमलोगोंने उसपर आक्रमण कर उसका यथासर्वस्व छीन लिया। तथा और भी पाँच सौ रूपये देनेकी प्रतिज्ञा करा उसे छोड़ दिया। हमलोग जानते थे; कि विपत्तिमें पड़कर वह अवश्य ही तुम्हारा आश्रय

लेगा, और इसी तरह हमारा उद्देश्य सिद्ध होगा। वहीं हुआ भी। हमलोगों ने तुम्हें फसानेका सब प्रबन्ध पहले ही कर रखा था। तुमको अब मालूम हो गया होगा, कि तुम ही एक चतुर और बुद्धिमान मनुष्य नहीं हो। तुमसे भी अधिक चतुर और मेधावी मनुष्य यहां वर्त्तमान हैं।

शङ्करराव भैरवका भैरव नाद चुपचाप सुनते रहे। वे समझ गये कि उनके वर्त्तमान साथी कैसे मनुष्य हैं और उनका जीवन इस समय निरापद नहीं है। तथापि उन्होंने अपने हृदयकी यह चञ्चलता किसी प्रकार प्रकट न होने दी। उन्होंने शान्त-भावसे कहा—"समझ गया, अब मुझे तुमलोग क्या किया चाहते हो?"

भैरव—"हमलोग यह अच्छी तरह समझ गये हैं, कि तुम इस दलके शुभ-चिन्तक नहीं हो। अतः हमलोग तुम्हें स्वाधीन नहीं रहने देना चाहते। तुम्हारे आहार शयनका प्रबन्ध कर दिया गया है—अब आनन्दसे यहीं रहो।

शंकर—"कितने दिनोंके लिये?"

भैरव—"जब तक विचार समाप्त न हो जाये।"

शंकर—"उसका तो यह मतलब है, कि तुमलोग मुझे मार डालना चाहते हो?"

भैरव—"सो अभी नहीं बता सकता।"

इसके बाद दलपतिका इशारा पाकर दो मनुष्य शंकररावको राहकी दूसरी ओरके एक छोटे दरवाजेसे भीतर ले गये। मसालके तीव्र आलोकमें शंकररावने देखा, कि यह किसी

स्थानमें जानेका एक अत्यन्त संकीर्ण पथ है जो शायद किसी भूगर्भकी ओर चला गया है। इस पथके अन्तमें एक वैसा ही छोटा दरवाजा या प्रवेश-पथ था। इसके वाद एक बड़ा कमरा या पहाड़ी गुहा थी। इसी स्थान पर मशाल रख कर एक मनुष्य बोला—"यही तुम्हारा विश्राम भवन है।"

इस गुहामें दरवाजा लगा हुआ था। दस्यु दरवाजा बन्द कर चले गये। अब भी शंकररावके हाथ बंधे थे। शंकरराव उसी भूगर्भस्थित कोठरीमें खड़े अपनी अवस्था पर विचार करने लगे। उन्होंने सब ओर घूम घूम कर देखा, चारों ओर पत्थरकी दीवार थी। बाहर दरवाजे पर सशस्त्र पहरेदार बैठे थे—हाथ बंधा था—ऐसी अवस्थामें भागनेकी चेष्टा कल्पना मात्र थी।

एकाएक उनकी दृष्टि छतकी ओर जा पड़ी। वहां रोशनी कम पड़ने पर भी उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो कोई मुँह लटका कर देख रहा है। यह क्षणभरके लिये। तुरन्त ही वह चेहरा गायब हो गया। वे भी उस ओर विशेष लक्ष्य न कर, दूसरी ओर देखने लगे। परन्तु वास्तवमें उनकी दृष्टि उधर ही थी। क्षण भर वाद ही छतके उसी स्थानसे फिर एक नरमुण्ड दिखायी दिया। वह मुख बड़ा ही मलिन, बड़ा ही बिशुष्क था। पागलों-की भांति दोनों आंखें चमक रही थी और देखनेमें बड़ा ही भयानक मालूम होताथा।

सोलहवां परिच्छेद ।

मुक्ति ।

शंकरराव मन ही मन कांप उठे। यह कौन है? यह कैसी पिशाच लीला है? पर मुंहसे कुछ बोले नहीं। कुछ देर बाद अपने माथे पर एक हाथ लटकता देखकर वे और भी विस्मित हुए। इसके बाद पत्थरका एक टुकड़ा उनके सामने आ गिरा। तब क्या यह कोई संकेत है?

वे साहस कर उधर ही बढ़े। उस हाथने भी संकेतसे उन्हें अपनी ओर बुलाया। उसके पास जाने पर उस अपरिचितने मृदु स्वरमें कहा—"खबरदार! चिल्लाना मत, जोरसे न बोलना। बाहर जो पहरे पर बैठे हैं, वे सुन लेंगे। तुम क्या पहचान न सके?

शंकररावने कहा—"नहीं, कैसे पहचानूंगा?"

उत्तर—"मैं धनेश्वर हूं?"

शंकर—"तुम धनेश्वर! तुम क्या यहां कैद हो?"

धनेश्वर—"हां। तुमने क्या मुझे इसी दलमें संयुक्त समझा था?"

गये थे। तुम कालूराय जैसी पोशाक फेंकनेके लिये दुर्गा-भवनसे बाहर निकले थे।"

धनेश्वरने हँसकर कहा—"तुम्हें यह मालूम हो गया है—अच्छी बात है। परन्तु मैं कालूराय नहीं हूं और उससे मेरा कोई सम्बन्ध भी नहीं है। षट्चक्र-दलवालोंने मुझ पर अत्याचार करना आरम्भ किया है। उनके अत्याचारसे छूटने और उन्हें डरानेकी इच्छासे ही एक अशुभ मुहूर्त्तमें मैंने कालुराय बननेकी कल्पना कर यह पोशाक बनवायी थी। परन्तु उस दिवस संध्याके समय जब दुर्गा-भवनमें कालूराय आ पहुँचा, तो मैं बहुत डर गया। क्योंकि यदि कोई वह पोशाक देख लेता तो मुझे ही कालूराय समझता। इसीलिये वह पोशाक फेंकनेके लिये रात्रिके समय बाहर निकला था।"

इसके बाद जो कुछ हुआ था, धनेश्वरने सब कह सुनाया। उसने कहा—"चन्द्रकलाको दीपक बुझाते देखकर मैं समझ गया, कि यह मेरी जीवन-रक्षाका एक उपाय है। मैं भी अन्धकारमें दरवाजेको लक्ष्यकर दौड़ पड़ा, परन्तु बाहर निकल न सका; गोवर्द्धनने मुझे पकड़ लिया। अब हम दोनोंमें घोर मल्लयुद्ध होना आरम्भ हुआ। इसी समय केशवने फिर दीपक जलाया और तीनोंने मिलकर मुझे पकड़ लिया। यदि केशव बीचमें न पड़ता तो गोवर्द्धन मुझे अवश्य ही मार डालता। अन्तमें बहुत कुछ वाद विवादके बाद वे मुझे यहाँ रख गये।"

शंकर—"चन्द्रकलाका क्या हुआ?"

धनेश्वर—"कह नहीं सकता। उस समय उसी स्थानपर वह बेहोश पड़ी हुई थी।"

शंकर—"वह भी भाग गयी है।"

धनेश्वर—"पापी गोवर्द्धनने उसे मार तो न डाला?"

शंकर—"मेरा भी यही विश्वास है। अच्छा, वहाँ रक्त किसका पड़ा था?"

धनेश्वर—"गोवर्द्धनका। उसके हाथमें एक घाव था, मुझसे झगड़ा करते समय उसीसे यह रक्त गिरा है।

एकाएक धनेश्वर रुक गया। शंकररावने पूछा—"क्या हुआ।"

धनेश्वर—"कुछ रोशनी दिखाई दी।"

धनेश्वरने जिधर इशारा किया था, उधर ही दोनो देखने लगे। बहुत दूरपर एक ऊँचे स्थानपर सचमुच ही एक मशाल की रोशनी दिखाई दी। मशालधारी एकाएक एक जगह खड़ा हो गया। उसकी बगलमें एक दूसरा मनुष्य भी आ खड़ा हुआ।

यह देखकर दोनोंको ही विश्वास हो गया, कि डाकू साव-धान हो गये हैं और ये डाकू उनकी ही खोजमें निकले हैं। ये दोनों भी सतर्क हो गये।

चारों ओर ऊँची पर्वत-प्राचीर और बीचमें एक बहुत ही पतला—अत्यन्त संकीर्ण पथ था। वह भी कुछ आगे बढ़ने पर बन्द हो जाता था। पहाड़पर चढ़ जानेकी कोई राह न थी—शायद अन्धकारके कारण न दिखाई देती हो। पहाड़के भीतरसे

और भी कोई गुप्त पथ है या नहीं—यह भी उन्हें मालूम न था ।

कुछ देर बाद मशालधारी तथा उसका साथी—दोनो ही वहाँसे चले गये । इसके बाद ठीक उनके माथेके ऊपर उनकी बातोंका शब्द सुन पड़ा । वे भी कुछ हट कर एक जगह छिपना ही चाहते थे, कि एकाएक पहले कुछ पत्थर और रोड़े, फिर कोई बड़ा पदार्थ बड़े ज़ोरकी आवाजसे उनके सामने आ गिरा । साथ ही एक मशाल भी उनके सामने आ गिरी जो कि बुझना ही चाहती थी ।

उसी निर्वाणोन्मुख मशालकी रोशनीमें शंकर और धनेश्वरने देखा, कि असावधानतावश एक डाकू पहाड़से नीचे आ गिरा है । जो दो मनुष्य शंकररावके पहरेपर नियुक्त थे—यह उनमें से ही एक था । शंकरराव ने तेजीसे उसकी कमरसे पिस्तौल और छुरा निकाल लिया ।

उसे चोट गहरी लगी थी । कष्टसे उसका मुँह बिगड़ गया था । गिरनेके कुछ क्षण बाद वह इधर उधर देखने लगा । इसके बाद ज्योंहीं उसकी दृष्टि शंकरराव पर जा पड़ी त्योंही उसने बड़े ही कातर स्वरमें कहा—"शंकरराव !"

शंकरराव काँप उठे । उन्होंने इस मनुष्यको कभी न देखा था । इसके बाद उस मनुष्यने क्षीण स्वरमें कहा—"मैं मरता हूं ।"

शंकर—"तुम्हें क्या बड़ा कष्ट हो रहा है ?"

दस्यु—"मेरा माथा फट गया है । मैं अब न बचूंगा ।"

इस समय धनेश्वर इधर उधर राह खोजने लगा। परन्तु शंकररावने उस मनुष्यके पास जाकर पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

डाकू—"मेरा नाम सोमेश्वर है। मेरा मकान सताराके पास है। मैं पहले लुहार था। कैसा भी मजबूत ताला क्यों न हो मैं खोल दूंगा।"

इस समय फिर कष्टसे उसका स्वर धीमा पड़ गया। शंकर रावने कहा—"तुमने आजीवन पाप उपार्ज्जन किया है। अब इस मृत्युकालमें तो अपना पाप-रहस्य खोलकर कुछ प्रायश्चित्त कर डालो।"

सोमेश्वरके कानमें बात गयी। वह विकृत-कण्ठसे फिर बोला—"भद्रागिरिमें तुमने एक लाश देखी थी ?"

शंकर—"हाँ, वह कालूरायके वस्त्र पहने थी।"

सोमेश्वर—"वह कदापि कालूराय नहीं है। उसका नाम गोकुल राय है। वह मेरे हाथों ही मारा गया है। मेरे चले जाने बाद, किसीने तुम्हें धोखा देनेकी इच्छासे उसे कालूराय सजा दिया था।"

इसके बाद सोमेश्वर चुप हो गया। कुछक्षण ठहर कर क्षीण-स्वरमें फिर बोला—"अब भी कहनेकी बहुतसी बातें हैं। गोकुल मेरे कारखानेमें ही काम करता था। एकदिन गोवर्द्धनने वहाँ जाकर एक कोठीवालकी कोठीमें डाका डालनेका प्रस्ताव किया। हम लोग पहले सम्मत न हुए, परन्तु गोवर्द्धनके

प्रलोभनमें पड़कर फिर सहमत हो गये। उसी समय मालूम हुआ कि उसी कोठीवालसे गोवर्द्धनकी कुछ अनवन भी है। उसी कारणसे प्रतिहिंसा लेनेके लिये वह बहुत दिनोंसे काम कर रहा है।"

इस स्थानपर सोमेश्वर फिर ठहर गया और उदास भावसे शून्यकी ओर देखता रहा। शंकररावने फिर पूछा—"फिर क्या हुआ ?"

सोमेश्वर एक ठण्डी सांस लेकर बोला—"फिर हमलोग तीनों मनुष्योंने मिलकर उस कोठीमें डाका डाला। गोवर्द्धनने दरवानको मार डाला। इस घटनासे सतारामें बड़ी हलचल मच गयी। हमलोग भी डर गये और वहाँसे भागकर नाना स्थानोंमें घूमते हुए यहाँ आबसे। गोवर्द्धन शायद हम लोगोंको पहचान न सका अथवा...

शंकर रावने देखा कि अब विलम्ब नहीं हैं; परन्तु अब भी बहुतसी बातें जाननी बाकी है। अतः उन्होंने जल्दीसे पूछा—"भैरव कौन है ?"

सोमेश्वर बोला—भै...र...व...वही......

सोमेश्वरका प्राण-पखेरू इसी समय देह-पिञ्जरको छोड़कर उड़ गया। इसी अवसरमें बड़ी चेष्टासे धनेश्वरने एक पथ खोज निकाला। यह बड़ा ही सङ्कीर्ण दुर्गम पथ था। अब दोनों उसी पथसे आगे बढ़े। इसी तरह बड़े कष्टसे कुछ दूर अग्रसर होने पर वे दोनो एक दूसरी गुहामें जा पहुंचे। इसी

समय एक जन्तु ज़ोरसे गरज उठा। दोनों चौंक कर पीछे हट गये।

इसके बाद शंकररावने पिस्तौल सम्हाली। वे अब जितना ही आगे बढ़ते गये, वह गर्जन-शब्द भी उतना ही बढ़ने लगा। इसी समय उनके कानोंमें एक प्रकारकी कोमल ध्वनि आ पड़ी। किसीने रमणी-सुलभ स्वरमें पुकारा—"सिंहा! सिंहा!! इधर आओ।"

शंकर और धनेश्वर दोनो ही एक दूसरेका मुंह देखने लगे। इस निर्ज्जन गिरिकन्दरामें—इस घनघोर निशीथिनीके समय यह कामिनी कौन बोल रही है? परन्तु उन्हें अधिक चिन्तित न होना पड़ा। थोड़ी ही दूर आगे बढ़ने पर उन्हें एक क्षीण आलोक दिखाई दिया। और कुछ ही देर बाद एक शैलबालाके समान सुन्दरी उनके सामने आ खड़ी हुई।

उसे देखते ही शङ्कररावने कहा—"चन्द्रकला!"

चन्द्रकला चौंक उठी। शङ्कररावने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और आनन्द भरे स्वरसे कहा—"ईश्वरको अनेकानेक धन्यवाद। चन्द्रकला! मुझे स्वप्नमें भी यह आशा नहीं थी कि तुम्हारा यह चमकीला मुखमण्डल फिर दिखाई देगा।"

धनेश्वर कुछ हटकर खड़ा हो गया। चन्द्रकलाने आँखोंमें आँसू भर कर कहा—"तब तुम मुझे भूले न थे?"

शङ्कर—"भूला न था! तुम्हें क्या भूल कर भी भूल सकता हूं। तब से केवल तुम्हारी चिन्तामें ही मैं पागल हो रहा था।

तुम्हें कुटीमें न देखकर मेरी तो यही धारणा हो गयी थी कि तुम्हारे निष्ठुर पिताने तुम्हारी हत्याकर डाली है।"

चन्द्रकला—"वह मेरा पिता नहीं है। अपने मुंहसे ही गोवर्द्धनने स्वीकार किया है, उसका मुझसे किसी प्रकारका भी रक्त सम्बन्ध नहीं है। गोवर्द्धनने तो मुझे समाप्त ही करना चाहा था, परन्तु ईश्वरकी दयासे मैं बच गयी।"

शङ्कर—"मेरे कारण ही तुम्हें इतना कष्ट उठाना पड़ा।"

चन्द्रकला—"उसके लिये मैं दुःखित नहीं हूं।"

इसके बाद तीनों उसी कमरेमें बैठकर बातें करने लगे। बहुत कुछ सोच विचारके बाद सवेरा होते ही गोवर्द्धनको गिरफ्तार करना निश्चय हुआ। साथ ही यह भी निश्चित हो गया कि मदनजी ही भैरवका वेश बनाये हैं; परन्तु वही कालूराय है—यह किसी तरह स्थिर न हो सका।

सत्रहवां परिच्छेद ।

पथकर ।

क दिन एक घोड़ा-गाड़ी पर सवार होकर तीन मनुष्य शिवनिवासकी ओर जा रहे थे। इनमें दो अच्छे वस्त्र पहने थे और देखनेमें भले आदमी जैसे मालूम होते थे, परन्तु तीसरा बड़ा ही दरिद्र वेश बनाये हुए था तथा देखनेमें निम्न-श्रेणीका मनुष्य मालूम होता था।

उन दोनों भद्र-पुरुषोंमें एक हमारे पाठकोंके परिचित लक्ष्मी-पतिराय और दूसरे भुवनेश्वरसिंह थे। भुवनेश्वरसिंह किसी कार्यवश शिवनिवास जा रहे थे। अतः लक्ष्मीपति और भुवने-श्वरमें शीघ्र ही परिचय और फिर वर्त्तालाप आरम्भ हो गया, परन्तु वह दरिद्रवेश धारी मनुष्य चुपचाप एक ओर बैठा रहा।

लक्ष्मीपतिने कहा—"पहले शिवनिवास बड़ा ही उत्तम स्थान था, परन्तु आजकल चोर डाकुओंका उपद्रव वहां इतना अधिक हो गया है, कि भले आदमियोंका रहना कठिन हो गया है।"

भुवनेश्वरने कहा—"मैंने भी कुछ कुछ समाचार सुना है। कालूराय नामक किसी डाकूका अत्याचार खूब बढ़ गया है।"

लक्ष्मीपति—"बहुत ही अधिक। पुलिस उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। दो तीन मनुष्य एकाएक न जाने कहाँ गायब हो गये, कुछ पता नहीं लगता। बड़ा ही भयंकर स्थान है।"

इसी समय वह दरिद्र बोल उठा—"क्या शिवनिवासमें मदनजी नामके कोई मनुष्य रहते हैं?"

लक्ष्मीपति—"हाँ, रहते तो हैं, उनसे क्या तुम्हारा परिचय है?"

दरिद्र बोला—"पहले खूब था।"

लक्ष्मी—"यह परिचय कहाँ हुआ?"

दरिद्र मनुष्यने जरा सोच विचार कर कहा—"यह ठीक स्मरण नहीं।"

लक्ष्मीपति फिर भुवनेश्वरसिंहसे बातें करने लगे। इसी समय गाड़ी भद्रा पहाड़के पास जा पहुंची। लक्ष्मीपतिने भुवनेश्वरसे कहा—"इसका नाम भद्रा पहाड़ है। इसके नीचेसेही शिवनिवास जानेकी राह है। यहीं पर एक दिन कालूरायने एक-

एकाएक गाड़ी खड़ी हो गयी। भुवनेश्वरने कहा—"क्या मामला है—कालूराय तो नहीं आ पहुंचा?"

लक्ष्मीपति खिड़कीसे झांक कर देखना ही चाहते थे, कि इसी समय गाड़ीका दरवाजा खोल कर एक आदमी सामने खड़ा हो गया। लक्ष्मीपति एकाएक भयसे चिल्ला उठे—"कालूराय"!

कालूरायकी वेशभूषा पहलेके समान थी। उसके दोनों हाथोंमें पिस्तौल थीं। दोनों मनुष्योंके मस्तककी ओर निशाना

साध कर कालूरायने कहा—"महाशयगण! अब देर न कीजिये। पासमें क्या है, सो दे दीजिये।"

लक्ष्मीपतिने चञ्चल स्वरमें कहा—"क्या दे दें?"

कालू—"पथकर। मकानमें रहते हो तो जमीन्दारको खजाना देते हो—सरकारको टैक्स देते हो। इस पथ पर मेरा प्रभुत्व है। इस राहमें जानेका कर देना पड़ता है। जल्दी लाओ।"

लक्ष्मी—"मेरे पास कुछ नहीं है।"

कालू—"रुपये न होंगे तो जीवन तो है, वही लूंगा।"

लक्ष्मीपति समझ गये कि सहजमें छुटकारा न होगा। अतः जेबमें जो कुछ था, सब निकाल कर दे दिया। भुवनेश्वरने भी यही किया। अब कालूरायने उस दरिद्रकी ओर देख कर कहा—"तेरे पास क्या है?"

वह बोला—"मेरे पास इन फटे कपड़ोंके अलावा और कुछ नहीं है। यदि यह लेना चाहो, तो ले लो। मेरे पास रुपया नहीं है, पर शिवनिवासमें मदनजीसे मिलने जा रहा हूं। यदि कुछ मिला तो लौटते समय तुम्हें दे जाऊँगा।"

कालूरायने तीक्ष्ण दृष्टिसे उसकी ओर देख कर कहा—"तू मदनजीको पहचानता है?"

दरिद्र—"क्यों, पहचानता क्यों नहीं!"

कालू—"झूठी बात! तुझ जैसे भूतोंसे मदन बात भी नहीं करता।"

इतना कहकर डाकूने जोरसे दरवाज़ा बन्द कर दिया। इशारा पाकर गाड़ीवानने गाड़ी आगे बढ़ायी।

तीसरे पहरके समय गाड़ी दुर्गाभवनके दरवाजे पर आ पहुंची। गाड़ीसे उतरते ही लक्ष्मीपतिकी दृष्टि मदनजी पर जा पड़ी। वह दुर्गाभवनके दरवाजे पर खड़े पान चबाते हुए एक मनुष्यसे बातें कर रहे थे।

तब क्या मदनजी कालूराय नहीं है? पैदल आनेकी राह बहुत ही सीधी है। पर गाड़ीको बहुत घूमकर आना पड़ता है। मदनजी भद्रा पहाड़के पास उन पर आक्रमण कर अनायास ही सीधे पथसे दुर्गाभवन पहले पहुंच सकते थे। किसी बातकी भी मीमांसा न हो सकी। लक्ष्मीपति चिन्तित चित्तसे अपने विश्रामगृहमें चले गये। भुवनेश्वर भी दुर्गाभवनमें ही ठहर गया। दरिद्र मनुष्य बहुत देर तक खड़ा खड़ा दुर्गाभवनकी ओर देखता रहा, इसके बाद मुंह फेरकर सस्ते स्थानकी खोजमें चला गया। दुर्गाभवनसे थोड़ी दूरपर ही एक दूसरी सराय थी, जिसमें कम हैसियतके मनुष्य रहते थे। वह दरिद्र उसी सरायमें चला गया।

अठारहवां परिच्छेद ।

मदनजी और मणिराम

सन्ध्या होनेमें अधिक देर न थी। मदनजी अपने कमरेमें बैठे हुए कुछ सोच रहे थे। आज उनका चेहरा कुछ उतरा हुआ था। अभी तक उन्हें यह खबर न थी, कि षट्चक्रके कारागारसे कैदी भाग गये हैं अथवा सोमेश्वरकी मृत्यु हो गयी है, तथापि न जाने किस कारणसे आज वह बड़े ही चिन्तित हो रहे थे।

धीरे धीरे सन्ध्या हो गयी। अन्धेरा चारों ओर छा गया। मदनजीने उठकर कमरेमें दीपक जलाया। दीपक जला कर वे बैठना ही चाहते थे कि इसी समय वह पूर्व परिच्छेदमें वर्णित दरिद्र उनके कमरेके दरवाजे पर जाकर बोला—"क्यों भाई साहब ! कैसे हैं ?"

मदनजीने एक बार सरसे पैर तक उसे देखा। कुछ क्षण बाद बोले—"किससे बातें कर रहे हो ? मैं तो तुम्हें नहीं पहिचानता।"

दरिद्र हंस पड़ा, बोला—'दरिद्रको कौन पहिचानता है ? और आज अब क्यों पहिचानोगे ? पहिचाननेका समय तो चला गया।"

मदन—"पाजी! बदमाश!! क्या पागलपन करनेका और कोई स्थान न मिला था? यहां अब अपना जाल फैलाने आये हो।"

दरिद्र—"यह क्या मदनजी! तुम क्या कह रहे हो? क्या मेरी अवस्था इस समय खराब हो गयी है, इसी लिये तुमने गाली देकर मेरी अभ्यर्थना की है। क्या तुम वास्तवमें जयन्त-पुरके मणिरामको नहीं पहिचानते?"

मदन—"नहीं! मैं तुम्हें नहीं पहचानता।"

मणिराम—"अच्छा मैं स्मरण दिला देता हूं कि ज्येष्ठ मास की पञ्चमी तिथिके दिवस तुम कहां थे? क्या मेरे मकान पर न थे? तुम क्या बीमार होकर मेरे यहां न पड़े थे? अब शायद याद आ गया होगा। क्या और भी कुछ कहूं? तुम्हारे पास पचास हजार रुपये थे। वे रुपये लेकर तुम पूना जाना चाहते थे, पर एकाएक बीमार हो जानेके कारण न जा सके। तब वे रुपये तुमने ताराबाईके साथ भेज दिये। राहमें कालूरायने गाड़ी पर आक्रमण किया और रुपये लूटकर भाग गया। क्या ये बातें स्मरण हैं?"

मदन—"अच्छी तरह।"

मणिराम—"अब शायद तुमने मुझे पहिचाना होगा।"

मदन—"नहीं, जयन्तपुरमें मणिरामके मकानमें मैं अवश्य था, परन्तु चाहे तुम वास्तवमें वही मणिराम हो तो तुम्हारा जो कुछ पावना था, वह मैंने चुका दिया। अब तुम यहां क्यों आये हो?

मणिराम—"अब तुम राहपर आये। उसी दिवससे तुम्हारा सुख सौभाग्य आरम्भ हो गया है। उसी दिवस तुम बड़े आदमी हो गये और मैं उसी दिवससे हीनावस्थामें जाता जाता आज इस अवस्था पर आ पहुंचा हूं। द्वार द्वार भिक्षा मांगता फिरता हूं।"

मदन—"तुम क्या पागल हो गये हो? यह क्या कह रहे हो?"

मणिराम—"ठीक ही कहता हूं। जिसके मकानमें रहकर तुम ने पचास हजार रुपये उपार्ज्जन किये उसकी दुरवस्थामें कुछ सहायता करना क्या तुम्हें उचित नहीं है।"

मदन—"बदमाश! तब क्या तू यह कहना चाहता है कि वे पचास हजार रुपये मैने ही लिये।"

मणिराम—"बात तो ऐसी ही है।"

मदन—"झूठा कहीं का। तू ने अपनी आंखों देखा था कि मैं रोगसे पीड़ित होकर तेरे घरमें पड़ा था। अब मुझे चोर ठहराता है।"

मणि—"अब तुम्हारी लड़कोंको फुसलानेवाली इन वातोंमें मणिराम न आयगा। अब यह बतलाओ, कि मुझे कुछ हिस्सा दोगे या नहीं?"

मदन—"तुम सहजमें न मानोगे। मैं होटलके मालिकको बुलाता हूं। तब तू यहां से जायगा, जब धक्का देकर निकाला जायगा।"

मणिरामने हंस कर कहा—"तुममें इतना साहस नहीं है। असली बात फूट जायगी। मैं भी उनसे कहूंगा कि यही कालूराय है, इसोने धनपति लक्ष्मीपतिके पचास हजार रुपये लूट लिये हैं।"

कुछ देर तक मदनजी मन ही मन न जाने क्या सोचते रहे। इसके बाद बोले—"इसका क्या प्रमाण है, कि तुम मणिरामही हो?"

मणिराम—"वह प्रमाण शङ्कररावके सामने दूंगा।"

मदन—"मैं यह नहीं कहता, बल्कि मेरा मतलब यह है कि पहले जैसा तुम्हें देखा था, वैसे तो अब तुम दिखाई नहीं देते।"

मणिराम—"वह छः वर्ष पहलेकी बात है। तबसे आज तक कितना परिवर्तन हो गया है।"

मदन—"देखो मणिराम! तुम मुझ पर वृथा ही सन्देह करते हो। मैं न तो कालूराय हूं और न मैंने धनपति लक्ष्मीपतिका एक पैसा ही लिया है। चाहे जो हो, यदि तुम वास्तवमें मणिराम हो तो मैं तुम्हारी कुछ सहायता अवश्य करूंगा।"

इतना कह कर मदनजीने उसके सामने एक दश रुपयेका नोट फेंक दिया। बोले—"यह लो, परन्तु यदि राहमें मैं दिखाई दे जाऊं तो मुझसे कदापि बातें न करना।"

मणिरामने कहा—"ऐसा ही होगा।"

मदनजी बोले—"अब जाओ, कल ठीक दोपहरके समय भद्रा पहाड़के पास मुझसे मिलना। तुमसे बहुत सी बातें कहनी हैं।"

"अच्छी बात है" कहकर मणिराम चला गया। उसके जाते ही मदनजी भी उसके पीछे पीछे चले। मणिराम उसी सरायमें चला गया। मदनजीने उसे सरायमें जाते देखकर कहा:—"अच्छी जगह है। मणिराम! कल सवेरे तुम्हे अब सूर्य-दर्शन न होगा।"

उन्नीसवां परिच्छेद ।

हत्या ।
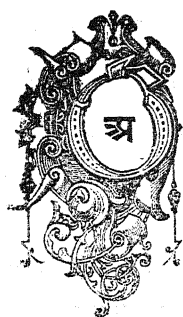
अपनी कुटी छोड़कर आज कई दिनोंसे गोवर्द्धन जङ्गलमें छिपा है। बड़ी कठिनतासे मदनजीने उसका पता लगाया। इस वार गोवर्द्धन मदनजीको देखकर प्रसन्न न हुआ। उसने बड़ी विरक्तिसे कहा—"मदनजी, तुम यहां क्यों आये हो? मैं अब तुम्हारा कोई काम न करूँगा। मेरे द्वारा तुम्हारा कोई काम अब न होगा।"

मदन—"देखो तुम्हारे भलेके लिये ही कहता हूं। जिसका तुम्हें इतना डर था, उसे तो समाप्त कर दिया, परन्तु अब एक नवीन विपत्ति आ पहुंची है। एक दूसरा जासूस हमारे पीछे लगा है। वह इस समय उस छोटी सरायमें है। यदि आज ही रात्रिके समय उसे समाप्त न कर दोगे, तो हम लोगोंको शिवनिवास त्याग कर चले जाना पड़ेगा"

शङ्कररावकी मृत्युका समाचार सुन कर गोवर्द्धनका साहस बढ़ गया। वह सहजमें ही मदनके मधुर वाक्यसे मोहित होकर उसकी इच्छानुसार काम करनेको तैय्यार हो गया।

उस सरायके अधिकारीका नाम जटाधारी था। कितने ही चोर, डाकू, खूनी और हत्यारोंसे उसका सम्बन्ध था। गोवर्द्धनसे भी उसका पहलेसे ही परिचय था। गोवर्द्धनने उसके पास जाकर धीरे धीरे उसे कुछ समझाया। जटाधारी चौंक उठा, बोला—"क्या सच कहते हो?"

गोवर्द्धन बोला—"तब क्या मैं झूठ कहता हूं। तुम क्या स्वयं नहीं समझ सकते, कि इतने अच्छे अच्छे स्थान छोड़ कर वह तुम्हारे यहां ही क्यों रहने आता? वह जासूस बड़ा ही खोटा है। यहां रह कर तुम्हारा सब भेद लेगा और मौका मिलते ही तुम्हें पकड़कर जहन्नममें भेज देगा।"

दीपचन्द नामका एक मनुष्य उसी स्थानपर बैठकर गांजा पी रहा था। जटाधारीने इशारेसे उसे अपने पास बुलाया और संक्षेपमें सब बातें उसे समझा दीं। साथ ही यह कहनेसे भी न चूका कि काम हो जानेसे तुम्हें भी चार पैसे मिल जायेंगे।

दीपचन्द राजी हो गया। मणिराम भोजन इत्यादिसे निश्चिन्त होकर जहां बैठ पान खा रहा था, वहीं जाकर दीपचन्द भी बैठ गया और उससे बातें करने लगा।

रात अधिक ढल चली थी। मणिराम लगातार जम्हाई लेने लगा और जटाधारीको पुकार कर बोला—"कहां सोयें, जल्दी बताओ।"

जटाधारीकी सरायमें कितनी ही छोटी बड़ी कोठड़ियां थीं, प्रत्येक कोठड़ीके दरवाजे पर नम्बर दिया हुआ था।

जटाधारीने दो चाभियां फेकते हुए कहा—"ये दोनों आठ और नौ नम्बर कोठड़ियोंकी चाभियां हैं। कोठड़ियोंमें विछावन रखा है, तुम लोग वहां जाकर सोवो।" इतना सुनते ही मणिरामने आठ नम्बरकी तथा दीपचन्दने ९ नम्बरकी चाभी उठा ली।

इसी समय जम्हाई लेता हुआ मणिराम बोला—"यहां कुछ मिलता है या नहीं ? रातके समय शराब पिये विना तो मुझे चैन नहीं पड़ती।"

दीपचन्दने कहा—"मिलती क्यों नहीं, रूपये दो, ला देता हूं।"

शराब लाई गयी। सरायके बाहर एक अन्धकारमय स्थानमें बैठकर दोनों ही शराब पीने लगे। इसके बाद दोनों अपने अपने कमरमें सोने चले गये।

रातके एक बजनेके समय गोवर्द्धनने जटाधारीको बुलाकर कहा—"अब क्यों देर करते हो ? मालूम होता है कि दीपचन्द सो गया।"

जटाधारी—"हो सकता है। नहीं तो अबतक अवश्य ही यहां आता।"

गोवर्द्धन—"उसकी आवश्यकता ही क्या है ? चलो मैं ही—"

बाकी बातें इशारेमें ही समाप्त हो गयीं। गोवर्द्धन और जटाधारीने धीरे धीरे जाकर उस कोठड़ीके दरवाजेमें धक्का दिया जिसमें दीपचन्द सोया था, परन्तु कोई उत्तर न मिला। तब ये दोनों मणिरामके दरवाजे पर जाकर कान लगा सुनने लगे।

मणिराम सो रहा था, उसके नाकका शब्द बाहर तक सुन पड़ता था। दरवाजा भीतरसे बन्द था। पहलेसे ही प्रबन्ध कर रखा गया था। अब बाहरसे ही कौशलसे दरवाजा खोल डाला गया। जटाधारी हाथमें बत्ती ले बाहर ही खड़ा रह गया। गोवर्द्धन चुपचाप भीतर चला गया। भीतर जाकर उसने अच्छी तरह देखा कि मणिराम कहां और किस भावसे सोया हुआ है। इसके बाद एक बड़ा सा छुरा निकाल कर उसने मणिरामके कलेजेमें जोरसे भोंक दिया। इसी एक आघात ही मात्रसे वह समाप्त हो गया, पुनराघातकी आवश्यकता न पड़ी। इसके बाद गोवर्द्धनने एक तकिया निकाल कर उसका मुंह धर दबाया। मृत मनुष्यका अङ्ग प्रत्यङ्ग जब उसे एक दम निस्पन्द दिखाई दिया, तब उसने जटाधारीको रोशनी लेकर भीतर आनेके लिये कहा।

लाश पर रोशनी पड़ते ही गोवर्द्धन विस्मय और भयसे चिल्ला उठा। जटाधारीने पूछा—"क्यों, क्या हुआ है?"

गोवर्द्धनने कोई उत्तर न दिया। केवल लाशके मुंह परसे तकिया हटा दिया। अब जटाधारीने भी देखा, कि मणिरामके बदले द पचन्द मारा गया। मणिराम बेलाग बच गया।

"क्या करोगे, उसकी अभी आयु बाकी है।" इतना कह गोवर्द्धनको लौटनेका इशारा कर जटाधारीने दरवाजेकी ओर मुंह फेरा—ही था, कि उसी तरह मैला कुचैला वस्त्र पहने

मणिराम दरवाजेपर खड़ा दिखाई दिया। उसके दोनों हाथोंमें दो पिस्तौलें थीं।

दोनों ही दुराचारी भयसे कांप उठे। मणिरामने कहा—"मैं पहलेसे ही तुम्हारी चालें समझ गया था। इसीलिये शराब पिलाकर चाभी बदल ली थी और वह मेरे कमरेमें जाकर सो रहा था। जानते हो, गोवर्द्धन, कि मैं कौन हूं? मेरा नाम शंकर राव है।"

गोवर्द्धन थर थर काँपने लगा। इसी समय शंकररावने सीटी बजायी। तुरन्त ही दो मनुष्य कहींसे आकर उनके पास खड़े हो गये। उन्होंने उन दोनोंको इशारा कर कहा—"इन्हें गिर-फ्तार करो।"

गोवर्द्धनका लुप्त साहस एकाएक लौटा आया। उसके पास ही एक अर्द्धभग्न खिड़की थी। उसने जोरसे उस खिड़कीमें एक लात मारी। खिड़की चरमरा कर टूट गयी। गोवर्द्धन झपट कर उस खिड़कीकी राहसे बाहर कूद पड़ा। उसी समय पिस्तौल की आवाज हुई और एक गोली भी उसी खिड़कीकी राहसे बाहर निकल गयी।

इधर उन दोनों नवागत पुरुषोंने जटाधारीको पकड़कर उसके हाथमें हथकड़ी पहना दी। शङ्करराव भी खिड़कीसे बाहर जा कूदे। परन्तु उन्हें अधिक दूर न जाना पड़ा। सामने एक लाश जमीनमें पड़ी दिखाई दी। उसे देखते ही वे समझ गये कि उनका निशाना व्यर्थ नहीं गया है। गोली भागते हुए गोव-

र्द्धनके मस्तकमें लगी है। आघात सामान्य होनेपर भी गोवर्द्धन वेहोश हो गया।

शंकर धीरज धरकर उसी स्थान पर खड़े हो उसके होशमें आनेकी राह देखने लगे। इसी समय उनके दोनों साथी जटा-धारीको पकड़ कर उनके पास ले आये।

क्षणभर बाद ही गोवर्द्धन होशमें आ गया। अब शंकर रावने कहा—"गोवर्द्धन! भाग्यसे लड़नेसे कोई लाभ नहीं होता। इतने दिनों तक तुम्हारे दिन अच्छे थे, इसीसे तुम्हारा पाप छिपा रह गया। अब उन्हीं पापोंके प्रायश्चितका अवसर आ पहुंचा है। गोकुलराय और सोमेश्वरने सब बातें कह दी हैं।"

गोवर्द्धनने बात उड़ा देनेकी चेष्टा करते हुए कहा—"मुझे उन बातोंकी कोई खबर नहीं है।"

यह सुनकर शंकररावने कहा—"मैं सब सुन चुका हूँ। तुमलोगोंने सतारामें एक कोठी लूटी है। दरवानको मार डाला है।"

वीचमें ही बात काट कर गोवर्द्धनने कहा—"झूठी बात है, सोमेश्वरने ही दरवानकी हत्या की है।"

शंकर—"उस कोठीके किसी कर्म्मचारीने तुम्हारी सहायता न की थी?"

गोवर्द्धन—"नहीं।"

शङ्कर—"क्या तुम तीनों ही उस काममें लिप्त थे?"

गोवर्द्धन—"हां।"

गोवर्द्धनकी बातें सुनकर उन्हें विश्वास हो गया कि सोमेश्वरने उनसे झूठ न कहा था। वे अपने दोनों सहचरों पर गोवर्द्धनकी रक्षाका भार देकर जटाधारीको अपने साथ ले कुछ दूर हट गये और उससे कितनी ही बातें पूछने लगे।

गोवर्द्धन इस समय जमीनपर पड़ा हुआ था। उसकी अवस्था जैसी शोचनीय हो रही थी, उससे उसके भाग जानेकी सम्भावना न थी। अतः वे दोनों कर्मचारी उसपर विशेष ध्यान रखना निष्प्रयोजन समझ कर एक ओर खड़े हो आपसमें बातें करने लगे। अवसर उत्तम देखकर गोवर्द्धन फिर भागनेकी चेष्टा करने लगा।

घिसकता लुड़कता हुआ कुछ दूर हटकर गोवर्द्धन उठ खड़ा हुआ। इसके बाद अपनी दुर्बल अवस्थामें भी वह जितना शीघ्र भाग सका उतनी तेजीसे हो एक ओरको भागा। अब दोनों कर्म्मचारियोंको अपनी भूल मालूम हुई। वे चिल्ला उठे। शब्द सुन कर शंकरराव वहां आ पहुंचे और जटाधारीको उनके सुपुर्द कर गोवर्द्धनके पीछे दौड़ पड़े, परन्तु वृथा। लगभग पन्द्रह मिनिट बाद वे अकेले ही लौट आये। गोवर्द्धन उनके साथ न था। तिरस्कृत होनेके भयसे दोनों कर्म्मचारी बड़े उद्विग्न हो रहे थे, परन्तु उन्होंने किसीको कुछ न कहा। अब सब दुर्गा-भवनकी ओर रवाना हुए।

इक्कीसवां परिच्छेद ।

गोवर्द्धनका गुप्तधन

उस रातमें फिर कोई उल्लेख योग्य घटना न घटी। सवेरा होते ही शंकरराव गोवर्द्धन और मदनकी खोजमें बाहर निकले। केशवसे मिलना भी आवश्यक था परन्तु शिवनिवास में वह दिखाई न दिया। अब वे पहाड़ीकी ओर रवाना हुए।

लगभग आध घण्टे तक पहाड़ोंमें भ्रमण करते हुए वे बड़ी ही दुर्गम पहाड़ी उपत्यकामें जा पहुंचे। इस स्थानपर एक पहाड़ी झरना छोटी तरङ्गिनीका आकार धारण कर पाषाण भूमिको धोता हुआ निर्ज्जन गिरि-प्रदेशको कल कल नादसे गुंजरित करता हुआ टेढ़ा मेढ़ा होकर इधर उधर बह रहा था। उसके पास ही बहुतसे छोटे छोटे वृक्ष तथा लताओंने उत्पन्न होकर उस स्थानको बड़ा ही सुहावना अथवा नेत्ररञ्जक बना दिया था।

शङ्करराव इस स्थानसे थोड़ी दूर पर एक शिलाखण्ड पर खड़े हो इस स्थानकी सूर्योदय कालको नेत्र सुखदायिनी शोभा निरख रहे थे। इधर उधर देखते एकाएक एक स्थान पर उनकी दृष्टि पड़ते ही वे चौंक उठे।

नदीकी एक ओर. पीठकर गोवर्द्धन ध्यानसे एक स्थानकी मिट्टी खोद रहा था। उसके सरपर पट्टीकी तरह एक चादर बँधी थी। बात क्या है जाननेके लिये शङ्करराव पहाड़ीसे उतरकर गोवर्द्धनके पासकी ही एक झाड़ीमें जा छिपे।

गोवर्द्धन बराबर खोदता ही गया। बहुत देर तक शङ्करराव समझ न सके, कि गोवर्द्धन क्यों यह स्थान इस तरह मनोयोग पूर्वक खोद रहा है। एकाएक वहीं बैठे बैठे उनकी दृष्टि और भी एक स्थान पर जा पड़ी। उन्होंने देखा कि गोवर्द्धनके पीछेकी ओर एक झाड़ीमें छिप कर कालूराय भी गोवर्द्धनके कार्य कलाप ध्यानसे देख रहा है।

कुछ देर बाद गोवर्द्धनने उस गड़हेके भीतरसे एक बक्स निकाला। बक्स खूब भारी था। गोवर्द्धनने एक बार बक्सका ढकना खोलकर उसके भीतरकी ओर देखा और फिर बन्द कर दिया। उस बक्समें कितने ही नकद रुपये, अशर्फियां और नोट थे। गोवर्द्धनने बड़े हर्षसे कहा,—"यही गोवर्द्धनका गुप्त धन है। किसकी सम्पत्ति और कौन भोग करता है! कालूरायकी कृपासे ही यह गुप्त-धन मेरे हाथ लगा है।"

इसी समय कालूराय चुपचाप अपने गुप्त स्थानसे बाहर निकल कर गोवर्द्धनके पीछे आ पहुंचा और बोला—"ठीक कहते हो, परन्तु आज कालूराय अपनी सम्पत्ति लेने आया है।"

गोवर्द्धन चौंककर उठ खड़ा हुआ। ज्योंही उसने मुंह फेरकर उसकी ओर देखना चाहा त्योंही कुपित व्याघ्रकी भांति

कालूराय उसपर झपट पड़ा और बलपूर्वक उसने गोवर्द्धनका गला धर दबाया ।

दुश्चिन्ता और शंकररायकी गोली लगनेके कारण बहुतसा रक्त निकल जानेकी वजहसे गोवर्द्धन दुर्बल हो गया था । वह किसी तरह भी अपनेको छुड़ा न सका । कालूरायने फिर कहा—“चोर ! बदमाश !! मेरी ही सम्पत्ति पर तूने हाथ डाला । मैंने अपने प्राणोंकी ममता त्यागकर एक धनीके पचास हजार रुपये गायब किये, वही रुपये तूने चुरा लिये । मैं राहके किनारे जंगलमें रुपये छिपाकर किसी कामसे अलग हटा और तू वह रुपये उठा लाया । मुझे आजतक इस बातकी खबर ही न थी । कल मालूम हुआ है । इस बार तुझे मारे बिना न छोड़ूँगा ।”

आतर स्वरसे गोवर्द्धनने कहा—“छोड़ो, छोड़ो, मेरा प्राण जाता है । तुम जिस समय रुपये रख कर यह देखने गये थे, कि गाड़ी चली गयी या नहीं, उसी समय मैं रुपये उठा लाया । इसमें मेरा क्या दोष है ? ऐसा तो सभी करते हैं । दो सिंह जब लड़ते हैं, तो सियारकी बन आती है ।”

कालूरायने गरजकर कहा—“हां, तुम्हारा क्या दोष है ? दोष तो मेरा है । तू नहीं जानता, कि उस दिवस तूने मुझे कितनी बड़ी हानि पहुंचायी है । वह मेरे जीवनका प्रथम पाप था । उससे पहले मैंने कोई पाप न किया था । यदि उस दिवसके रुपये मेरे हाथसे न निकल जाते तो फिर मैं कभी पाप-पथ पर दिखाई न देता । मैंने क्या तेरे लिये चोरी की थी ? यदि वह

सम्पत्ति मेरे हाथमें रहती तो मैं सुखसे अपना जीवन व्यतीत करता। फिर चोरी डाकेजनी न करता। मुझे पाप-कर्मके लिये घरसे बाहर न निकलना पड़ता। तूने मेरी सब आशाओं पर पानी फेर दिया है। आज तुझे उसका प्रतिफल दूंगा।"

कालूरायने अब और भी जोरसे गोवर्द्धनका गला धर दबाया। सांस रुक जानेके कारण गोवर्द्धन की अवसन्न देह भूमि पर लौट पड़ी। अब कालूराय उसका गला छोड़कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा।

शङ्करराव भी यह स्वर्ण—सुयोग त्याग न सके। अपने गुप्त स्थानसे निकल कर धीरे धीरे वे नदीमें उतर पड़े। उस स्थानमें नदीका पाट अधिक चौड़ा न था परन्तु चौड़ा न रहने पर भी उसकी गहरायी अधिक थी। शङ्करराव गले तक जलमें उतर गये। इस समय नदीकी ओर पैरकर गोवर्द्धन पड़ा था। उसकी छाती पर कालूराय भी मुंह फेरे ही बैठा था। उसकी भी पीठ नदीकी ओर ही पड़ती थी। शङ्कररावने इस सुअवसर का बड़ा ही सुन्दर उपयोग किया। वह चुपचाप उस बकसको उठा लाये और एक निभृत स्थानपर उन्होंने वह सन्दूक छिपा कर रख दिया और फिर उसी तरह झाड़ीमें छिप बैठे। यहाँ आकर फिर उन्होंने गोवर्द्धन और कालूरायकी ओर देखा तो दोनों ही नदीमें दिखाई दिये।

गोवर्द्धनको लाश नदीमें उतरा रही थी। कालूराय किनारे आकर अपने चारों ओर देखने लगा, परन्तु वह धनपूर्ण सन्दूक

उसे कहीं दिखाई न दिया। उसने मन ही मन सोचा, शायद गोवर्द्धनसे हाथा पाई करते समय वह नदीमें जा गिरा है। रहे, अच्छे ही स्थान पर है। समय पर आकर उठा ले जाऊंगा। ये ही बातें सोचकर उस स्थानको चिन्हित कर वह शिवनिवासकी ओर चला गया।

शङ्करराव भी लौट चले। गोवर्द्धनसे युद्ध करते समय और पानीसे भीग जानेके कारण कालूरायका मुखावरण कुछ हट और कुछ फट गया था। अतः शङ्कररावने भी दूरसे ही उस का मुंह अच्छी तरह देख लिया।

जाते जाते कालूरायने एक निराला स्थान देखकर अपना आवरण एक स्थानपर उतारकर फेंक दिया और भले आदमियोंके वेशमें गाँवकी ओर चला गया।

बीसवां परिच्छेद ।

रहस्योद्घाटन ।

आज दो पहरके समय दुर्गाभवनमें बहुतसे मनुष्य एकत्र हुए। इनमें यात्री थोड़े ही थे। विशेष कर उसी ग्रामके रहनेवाले तथा कई अन्य भद्र पुरुष एकत्र हुए थे। दुर्गाभवनके बीचके कमरेमें बैठकर वे सभी आपसमें वार्तालाप कर रहे थे।

नरोत्तम, शङ्करराव और लक्ष्मीपति एक ओर बैठे थे। उनसे थोड़ी दूरीपर बैठ कर तारा चन्द्रकलासे बातें कर रही थी। सबका चेहरा गम्भीर हो रहा था। सभी मानो किसीके आगमनकी राह देख रहे थे। इनके अतिरिक्त गांवके कई भद्र पुरुष तथा शङ्करके साथी दोनों पुलिस कर्म्मचारी भी वहाँ उपस्थित थे।

इसी समय धनेश्वर वहाँ आ पहुंचा। उसे देखते ही सब प्रसन्न हो उठे, क्योंकि एकाएक उसके गायब हो जानेके कारण सभी अत्यन्त चिन्तित हो रहे थे। ताराका मुखकमल प्रसन्नतासे खिल उठा।

यह आनन्द स्रोत कुछ शान्त होने पर रत्नेश्वरने उठकर गम्भीर स्वरमें कहा—"मैं कर्तव्यके अनुरोधसे इस समय एक ऐसा कार्य किया चाहता हूं जिससे आप लोगोंकी प्रसन्नतामें कुछ वाधा पड़ेगी। आशा है, कि आप लोग मेरा अपराध क्षमा करेंगे। मैं सताराके जासूस विभागका एक कर्म्मचारी हूँ। अतः हत्या और डकैतीके अपराध पर धनेश्वर-को गिरफ्तार करता हूं। इनका नाम धनेश्वर नहीं बल्कि कुबेरराव है।"

इतना कहकर रत्नेश्वरने धनेश्वर या कुबेररावका हाथ पकड़ लिया। इसके बाद उपस्थित पुरुषोंको लक्ष्यकर कहा—"आजके दो वर्ष पहले भवानीचरण पन्थके घर डाका पड़ा। दरवानको खूनकर किसीने उनकी कोठी लूट ली। जिस सन्दूकमें उनकी रोकड़ रखी थी, उसकी दो चाभियां थी। एक

मालिकके पास रहती थी और दूसरी उनके विश्वस्त कर्मचारी इन्हीं धनेश्वर या कुबेररावके पास रहती थी। मालिकके पास जो चाभी थी वह तो मिल गयी, परन्तु कुबेररावके पासकी चाभी न मिली। इसके अतिरिक्त अन्य कारणोंसे भी पुलिसका उन पर सन्देह हुआ। उनके नामका वारण्ट निकला। यह समाचार कुबेररावको मालूम होते ही वे वहाँसे भाग गये। उन्हें पकड़नेका भार मुझे ही मिला। हत्याका अपराध अभी प्रमाणित न हुआ है। तथापि चोरीके अपराधमें मैं इन्हें गिरफ्तार करता हूँ।"

इतना सुनते ही ताराका चेहरा मलिन हो गया और सभी दु:खितसे दिखाई देने लगे, परन्तु शङ्करराव अविचलित भावसे ज्योंके त्यों बैठे रहे। कुछ देर बाद शङ्कररावने गम्भीर स्वरमें कहा--"धनेश्वर, तुम क्या कहते हो?"

धनेश्वरने नत-मुखसे कहा—"यह सत्य है, कि मेरा नाम कुबेरराव है और मैं भवानी-चरण पन्थके यहाँ काम भी करता था, परन्तु मैं अपराधी नहीं हूँ। मेरे पास चाभी अवश्य थी। परन्तु वह चाभी किसीने चुरा ली। निरपराध रहने पर भी अपमानित और लांछित होनेके भयसे मैं भाग आया। परन्तु मैं निर्दोष हूं।"

शङ्कररावने कहा—"मैं भी यही कहता हूं, कि तुम बिल्कुल निर्दोष हो। मुझे भी तुम पर सन्देह हुआ था, मैंने अच्छी तरह तुम्हारे रहस्योंका पता लगाया है और मुझे पूरा विश्वास हो

गया है, कि तुम बिना किसी अपराधके ही इस तरह उत्पीड़ित और लांछित हुए हो ।" इसके बाद रत्नेश्वरकी ओर देख कर बोले—"मैं पहले ही समझ गया था, कि आप पुलिस कर्म्मचारी हैं, परन्तु मैं आपको प्रमाणित कर सकता हूं, कि आपकी भूल हुई है। धनेश्वरने न तो दरवानकी हत्याही की है और न लूटमें ही किसी प्रकारकी सहायता दी है ।"

रत्नेश्वरने क्रोधित होकर कहा—"आप क्या कह रहे हैं—मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ ।"

शङ्कररावने कहा—"मनुष्य मात्रसे भूल हो सकती है। असल बात यह है, कि सोमेश्वर, गोकुलराय और गोवर्द्धन—इन तीनोंनेहीं वहाँ डाका डाला था। इनमें पहले दो तो षट्चक्र दलके मनुष्य है। सोमेश्वरने मरते समय स्वयं ये बातें स्वीकारकी हैं और गोवर्द्धनने मेरे तथा अन्य दो पुलिस कर्म्मचारियोंके सामने ही सब बातें कहीं हैं ।"

इस बार रत्नेश्वरका क्रोध हवा हो गया। उसने क्षुब्ध स्वरमें कहा—"हाँ अवश्यही मैंने भूल की है। (भुवनेश्वरको दिखाकर) ये भवानीचरणके पुत्र है। जिस समय इनकी बहनकी अवस्था दो वर्षकी थी उसी समय उन्हें कोई चुरा ले गया। तबसे उनकी खोज हो रही है। अभी थोड़े ही दिन हुए, गोवर्द्धन पर इन्हें सन्देह हुआ और उन्होंने अनुसन्धानके लिये मुझे भेजा। असल बात यह है, कि गोवर्द्धन एक स्त्री पर आसक्त था। वह स्त्री भी चोरीके अपराधमें पकड़ी गयी। भवानीचरणने उसे

पुलिसके सुपुर्द किया। उसे कारादण्ड मिला और कारागारमें ही वह मर गयी। इसी क्रोधपर गोवर्द्धनने भवानीचरणकी कन्याको चुराकर कहीं छिपा रखा। मुझे इस बातका बहुत सा प्रमाण मिल गया है, कि चन्द्रकला ही भवानीचरणकी कन्या है।"

यह समाचार सुनकर सभी प्रसन्न हो उठे। सभी अश्रु प्लावित नेत्रोंसे चन्द्रकलाके चन्द्र-मुखकी ओर देखने लगे।

शंकररावने कहा--"ठीक बात है। मैंने भी गोवर्द्धनको यह बात स्वीकार करते सुना है।"

रत्नेश्वरने और भी क्षुब्ध-स्वरमें कहा—"शङ्करराव! आप की ही जीत हुई। मैंने इस बार अन्धेके समान काम किया है। इसका प्रमाण पानेपर भी, कि गोवर्द्धन ही चन्द्रकलाका अपहरण करनेवाला है, मैंने यह जाननेकी चेष्टा न की, कि उसी ने तो कोठीमें डाका नहीं डाला है?"

शङ्करराव मुसकरा उठे। रत्नेश्वरने कहा—"अब विलम्ब क्यों करते हैं? गोवर्द्धनको गिरफ्तार कीजिये।"

शङ्कर—"वह धृत होकर विचारके लिये जिस अदालतमें पहुंच गया है, वहां हमारी तुम्हारी गति नहीं है। मैंने अपनी आंखों देखा है कि नदीमें उसकी लाश उतरा रही है।"

रत्नेश्वर—"इतने पर भी अभी बहुतसे काम बाकी हैं।"

शङ्कररावने उसी समय सीटी बजाई। तुरन्त ही तिनुआ केशव और मदनजीके हाथमें हथकड़ी डाले हुए लिये वहां आ

पहुंचा। इस अवस्थामें केशवको देखकर नरोत्तमने मुंह फेर लिया।

इसी समय लक्ष्मीपतिने पूछा—"तुमने मदनको अन्तमें पकड़ ही लिया।"

शङ्कररावने कहा—"क्या करूं? षट्चक्र दलका सरदार है। केशव इसका सहचर है। छः मनुष्योंमें सोमेश्वर और गोकुलराय मर गये। अन्य दो को गिरफ्तार करनेके लिये मनुष्य भेजा है।"

हंस कर रत्नेश्वरने कहा—"तब सब ओरका काम आपने ही कर लिया है। इस तरह आपको सफलता प्राप्त करते देखकर मेरे मनमें तो ईर्षा उत्पन्न हो गयी है। अब यदि आपकी कृपासे कालूराय भी गिरफ्तार हो जाये तो सबको शान्ति मिले।"

शङ्करराव अब उठ खड़े हुए। बोले—"कालूरायकी भी अब चिन्ता नहीं है।"

इतना कहकर उन्होंने जेबसे हथकड़ी निकाली। सभी उत्सुक होकर उनके चेहरेकी ओर देखने लगे। वे धीरे धीरे लक्ष्मीपतिके पास जा पहुंचे और उनके कन्धेपर हाथ रखकर बोले—"मैंने आपको गिरफ्तार किया।"

सभी मनुष्य इतना सुनकर चौंक उठे। लक्ष्मीपतिने घबड़ाते हुए उठकर कहा—"मुझे! किस अपराध पर?"

शङ्कररावने गम्भीर स्वरमें कहा—"तुम्हीं तो देश-विख्यात डाकू कालूराय हो।"

लक्ष्मीपति—"भूल, सब भूल। शङ्कर, तुमने भूलकी है।"

शङ्कर—"नहीं, सो नहीं। आपने यह जानकर भी कि मैंने कालूरायको गिरफ्तार करनेका भार उठाया और उसकी खोज में चारों ओर घूम रहा हूं, अपना उपद्रव न त्यागा। उसीका यह परिणाम हुआ है।"

लक्ष्मी—"परन्तु उस समय मैं पूनामें था।"

शङ्कर—"जब चोरीका समाचार पूनामें पहुंचा उस समय आप अवश्य पूनामें थे, परन्तु आप किस तरह इतना शीघ्र इतनी दूरका पथ अतिक्रम कर आ पहुंचे, सो पता नहीं लगता, परन्तु मुझे पूरा विश्वास है, कि आप किसी तेज घोड़ेपर सवार हो स्टेशन तक आये थे और वहांसे रेलपर पूना जा पहुंचे।"

एक म्लान हंसी हँसकर लक्ष्मीपतिने कहा—"या तो तुम पागल हो गये हो; नहीं तो मुझे दुर्बल देख कर मेरे विपक्षमें खड़े हो गये। नहीं तो इस तरह काल्पनिक अनुमान पर निर्भर कर मुझे इस तरह अपमानित करनेकी चेष्टा न करते।"

शङ्कररावने कहा—"दोनोंमेंसे एक कारण भी नहीं है। असल बात यह है, कि कई छोटी छोटी घटनाओंसे मुझे आप पर सन्देह हुआ। आपको स्मरण होगा कि जयन्तपुरसे एक दिवस भुवनेश्वरके साथ आप एक गाड़ीमें बैठ कर आ रहे थे और आपके साथ एक दरिद्र मनुष्य भी था। मैं ही वह दरिद्र मणिराम हूं। उस समय भुवनेश्वरसे कालूरायके सम्बन्धमें जब आप बातें करने लगे तब आपके मुंहसे कई बातें ऐसी और इस ढङ्गसे निकल

पड़ीं तथा आपके मुख भावमें कुछ ऐसा परिवर्तन हुआ कि मेरा सन्देह और भी बढ़ गया। फिर जाली कालूरायको देख कर आपके मुखभावमें जो परिवर्तन हुआ था, वह भी मेरी दृष्टिसे छिप न सका। इन्हीं कारणोंसे चुपचाप आपके खास कमरेमें मैं गया और वहाँ जाकर जो चीजें आपकी सन्दूकमें देख आया, उनसे मेरा सन्देह दृढ़ धारणामें परिणत हो गया। और सबके अन्तमें पहाड़ी नदीके किनारे गोवर्द्धन और आपका मल्लयुद्ध मैंने अपनी आंखों देखा तथा आपकी यह स्वीकारोक्ति भी सुनी कि मैं ही कालूराय हूं और मैंने ही धनपति लक्ष्मीपतिके पचास हजार रुपये गायब किये हैं। साथ ही यह भी देख आया हूं कि पहाड़ीमें किस स्थानपर तुम अपना छद्मवेश त्याग आये हो। क्या अब भी आप यह कहना चाहते हूं कि मैं पागल हूं या मैंने भूल की है?"

लक्ष्मीपति कुछ देरतक माथा झुकाये खड़े रहे। इसके बाद बोले—"नहीं। अब मैं किसी तरह भी अपनेको बचा नहीं सकता। मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूं। कई कारणोंसे मेरी आर्थिक अवस्था खराब हो गयी। दूसरा उपाय न देख मैंने अपना धन स्वयं ही चोरी किया। मैंने कालूराय नाम धारणकर चोरी अवश्य की थी। परन्तु उस पचास हजारमें पचास पैसे भी मेरे हाथ न लगे। गोवर्द्धन समूची रकम गायब कर गया। यदि वे पचास हजार मुझे मिल जाते तो मैं कभी इस दुराचारमें प्रवृत्त न होता। शङ्करराव, तुम्हारा अनुमान सत्य है, मैं द्रुतगामी घोड़ेपर सवार

होकर पुनाके निकटस्थ रेलवे स्टेशन पर आया और समाचार मिलनेके पहले ही रेलपथ द्वारा पूना आ पहुंचा।"

शङ्करराव—"परन्तु भद्रा पहाड़ी पर मुझे क्यों बुलाया था?"

लक्ष्मीपति—"केवल तुम्हें धोखा देनेके लिये?"

शङ्कर—"गोकुलरायको अपनी पोशाक क्यों पहनायी थी?"

लक्ष्मीपति—"मैं जब पहाड़ीपर तुम्हारी राह देख रहा था, उसी समय दो मनुष्य आपस में लड़ पड़े। एक ने दूसरे को मार डाला। उस समय तुम्हें धोखा देनेके लिये मैं उसे अपना वस्त्र पहनाकर वहांसे भाग आया।"

इतना कहकर लक्ष्मीपति चुप हो रहे। शङ्कररावने भी फिर कुछ न पूछा। उनके सहकारी कर्म्मचारियोंने लक्ष्मीपतिके हाथमें हथकड़ी पहना दी और वे मदन तथा केशवको भी साथ लेकर उसी कोठड़ीमें कैदकर आये जिसमें जटाधारी कैद था।

तारा लक्ष्मीपतिको अपने चाचाकी भाँति श्रद्धा करती थी। उनकी यह अवस्था देखकर वह रोने लगी। शङ्कररावने कहा—"अब रोकर क्या होगा? अपना अपना कर्म्मफल तो सबको ही भोग करना पड़ता है। लक्ष्मीपति समाजद्रोही, विश्वासघातक और आत्म-प्रवंचक हैं। उन्होंने जैसा काम किया है वैसा फल भी भोगना ही पड़ेगा। अब हम लोग उनके लिये शोक प्रकट कर या दुःखित होकर ही क्या करेंगे। उन्होंने जैसा कर्म किया है वैसा ही फल भी मिला। हमारे जो रुपये उन्होंने चुराये थे, उसका अधिकांश मिल गया है। अभी मैंने देखा नहीं है, कि

कितना है। चाहे जितने हों, उसका अर्द्धांश मैं तुम्हें उस समय दूंगा जब तुम्हारा विवाह धनेश्वरसे होगा।"

इसी समय भुवनेश्वरने उठकर कहा—"शंकररावजी! अपनी बहनके विवाहके यौतुकका प्रबन्ध तो आपने कर लिया, परन्तु अब यह बताइये, कि अपने विवाहमें क्या यौतुक लेना चाहते हैं?"

शंकरने कुछ लज्जित होकर कहा,—"मेरा विवाह!"

हंस कर भुवनेश्वरने कहा:—"बन्धुवर! मुझे सब मालूम है। अब छिपानेसे कोई लाभ नहीं। मैं जानता हूं, कि मेरी बहन और आप दोनों ही प्रेम-बन्धनमें बंधे हैं।"

शंकररावने कहा—"इसमें सन्देह नहीं कि मैं आपकी भगिनी-को स्नेह-दृष्टिसे देखता हूं। परन्तु इससे क्या होता है? मैं एक साधारण पुलिस कर्म्मचारी हूं और आपकी भगिनी एक लक्षाधीशकी कन्या मैंने इस विवाह-सम्बन्धकी तो आशा ही त्याग दी है।"

भुवनेश्वर बोला—"जब चन्द्रकलाको लोग दस्यु-दुहिता कहते थे, जब वह कपर्द्दिकाहीन अवस्थामें थी, जब उसके पास सहाय-सम्पद्का नाम निशान भी न था, उस समय उस निरा-श्रया हतभागिनीको आश्रय देनेके लिये जो व्यग्र हो रहा था, चन्द्रकला उसके आगे लक्षाधीशकी कन्या नहीं है। फिर आप जैसा सदाशय और तीक्ष्ण बुद्धि जामाता मुझे कहाँ मिलेगा?"

शंकररावने अपनी सम्मति दे अपने पितृबन्धु नरोत्तमके पास जाकर बड़े ही नम्र-स्वरमें कहा—"आप मुझे क्षमा करें। केशव बड़ा ही दुराचारी हो गया है। मुझे बाध्य होकर उसे गिरफ्तार करना पड़ा।"

नरोत्तमने कहा—"मैं उसके लिये जरा भी दुःखित नहीं हूं, बल्कि प्रसन्न ही हुआ हूं; क्योंकि उसका प्रकृत चरित्र तो मुझे मालूम न था। अतः मैं निश्चय ही उसे अपनी समस्त सम्पत्तिका अधिकारी बनाता; परन्तु फल क्या होता? मेरा इतने कष्टसे उपार्जित द्रव्य शराब और वेश्याओंके फेरमें स्वाहा हो जाता। अब तुम्हारी कृपासे मेरी आँखें खुल गयी हैं। मैं अपनी धन-सम्पत्तिका अब दूसरा ही प्रबन्ध कर जाऊंगा।"

इतना कह कर वृद्ध नरोत्तम उस कमरेसे उठकर चले गये। अन्य मनुष्य भी अपने अपने कामसे चले गये।

बाइसवां परिच्छेद।

उपसंहार।

यथा समय सब अपराधियोंका मुकद्मा आरम्भ हुआ और यथोचित दण्डाज्ञा मिली।

अपराधियोंका विचार समाप्त हो जाने पर ताराका धनेश्वर अर्थात् कुवेरसे बड़ी धूमधामसे विवाह हुआ। शंकररावने २२ हजार रूपये उसे यौतुकमें दिये। शंकररावके पितृ-बन्धु नरोत्तमने भी यह प्रमाणित करनेके लिये, कि केशवकी गिरफ्तारीके कारण वे शंकररावसे अप्रसन्न नहीं हैं, ताराको पांच हजार रुपयेके अलंकार प्रदान किये।

ताराके विवाहके उपरान्त बड़ी धूमधामसे शंकररावका विवाह चन्द्रकलासे हुआ। उन्हें भी भुवनेश्वरकी ओरसे प्रचुर यौतुक प्राप्त हुआ।

शंकररावने केवल कालूरायको गिरफ्तार कर अपना धन उद्धार करनेकी इच्छासे ही जासूसी-विभागमें प्रवेश किया था। अतः अब उन्होंने अपनी नौकरीसे इस्तीफा दे दिया और सुख-पूर्वक चन्द्रकलाके साथ अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

(समाप्त)